1013

राष्ट्रीय प्रार्थना



ओं आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम् ।
आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथी जायताम् ॥
दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू ।
रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम् ।
निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः ॥
पच्यन्ताम् योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥

(यजु० अ० २। मंत्र २२)

ब्रह्मन् सुराष्ट्र में हों, द्विज ब्रह्म तेज धारी ।
क्षत्री महारथी हो, अरिदल विनाश कारी ॥
होवें दुधारू गौवें, पशु अश्व आशुवाही ।
आधार राष्ट्र की हों, नारी सुभग सदा ही ॥
बलवान सभ्य योधा, यजमान पुत्र होवें ।
इच्छानुसार वर्षें, पर्जन्य ताप धोवें ।
फल फूल से लदी हों, औषध अमोघ सारी ।
हो योग क्षेमकारी, स्वाधीनता हमारी ॥





स्वर्गीय श्री सन्त शरण जी मेहरोत्रा का

संस्मरण–सम्मान

यथा नाम, गुण तथा, महाशय, सन्त-शरण थे।
मेहरोत्राजी, सदा सदाशय, बोध - वरण थे॥
हंसमुख, उचित उदार कार्य में उनका मन था।
सेवा में तन लगा, राष्ट्रहित जीवन - धन था॥
हिन्दू - हिन्दी - हिन्दू के,
अनुयायी आदर्श थे।
यथाशक्ति जब तक जिए—
किये अमित उत्कर्ष थे।

(भगवत्प्रार्थना)

शंकर ऐसे व्यक्ति को—
अपना शाश्वत लोक दें।
हम सब प्रेमी, वृन्द को—
कभी न ऐसा शोक दें।

कवि पुष्कर शास्त्री

राज्य मंत्री सार्वजनिक निर्माण, उत्तर प्रदेश

विधान भवन, लखनऊ

प्रिय आर्य जी

आपका पत्र मिला। सन्त शरण जी के मृत्यु का समाचार मिल चुका है। संत शरण जी की मृत्यु से हम लोगों को बहुत ही धक्का लगा। वे अच्छे मित्र थे, मेरा उनका ४० वर्षो का सम्बन्ध रहा है। ऐसे मृदुभाषि सहनशील एवं दूसरों की सेवा करने वाले व्यक्ति कम ही देखने को मिलते है। संतशरण जी देखने में तो बहुत ही सीधे साधे और कोमल व्यक्ति लगते थे। उनको इस दृढ़ता से हटाने में किसी का भी सामर्थ नहीं था। हम लोग तो सदैव ही उनको दूसरे जवाहरलाल जी कहा करते थे क्योंकि जब कभी भी वे बड़ी भीड़ में जाते थे तो उनको देखकर लोग पं० जवाहर लाल जी की जय कहा करते थे। उनकी शक्ल सूरत, लम्बाई छोड़कर जवाहर लाल जी से मिलते थे।

आपका

राजबिहारी सिंह

बनारसी लाल आर्य
हिन्दी-प्रभा
अभिमन्यु पुस्तकाल, गुरूबाग, वाराणसी

१८ नवम्बर १९७१

प्रिय भाई,

श्री सन्तशरण मेहरोत्रा ऐसे साधु मनस्वी तथा ईमानदार व्यक्ति के निधन से वाराणसी की गहरी हानि हुई है। धीरे धीरे हमारे नगर के रत्न चले जा रहे हैं। स्वार्थ ईर्ष्या तथा मदान्धता के इस युग में सन्त शरण ऐसे सन्त का बड़ा सम्बल था। भगवान आपको, तथा उनके दुखी परिवार को शक्ति दे कि समुचित श्रद्धांजलि उन्हें अर्पित करें तथा उनकी संस्थाओं को अधिक क्रियाशील तथा तत्पर बनायें। १६-११-७१ के कृपापत्र के लिये धन्यवाद।

आपका

परिपूर्णानन्द वर्मा

स्वर्गीय सन्त शरण मेहरोत्रा से मेरा सम्बन्ध लगभग चालीस वर्ष से था। मैं उनकी सौम्य प्रकृति से प्रभावित था। मैंने उन्हें क्रोध करते नहीं देखा और न कभी उनसे किसी को कड़ी आलोचना सुनी। वे सब मित्रों से यथा सम्भव सद्भावना बनाये रखते हुए यथा शक्ति राष्ट्र की सेवा करना चाहते थे। राष्ट्र की स्वतन्त्रा में उनका भी योगदान था। स्वतन्त्र भारत में वे बहुत खामोशी से रचनात्मक कार्यों द्वारा समाज की सेवा करते रहे। देश को उन जैसे समाजसेवियों की बड़ी आवश्यकता है।

मुकुट बिहारी लाल
७-११-७२

यह जानकर बड़ा हर्ष हुआ कि अभिमन्यु पुस्तकालय, वाराणसी अपने हिन्दी-प्रभा वार्षिकी अपना अगला अंक स्व० संत शरण मेहरोत्रा की स्मृति में अपना श्रद्धांजलि अंक के रूप में प्रकाशित कर रहा है।

स्व० संत शरण जी मेहरोत्रा जी से मेरा निकट का सम्पर्क था जब भी मिलते थे हंसकर मिलते थे। उनकी मधुर मुस्कान एक आकर्षण था वे एक अच्छे सक्रिय सार्वजनिक कार्यकर्ता थे उनका सारा जीवन ही राष्ट्रीय आन्दोलन तथा समाज सेवा में ही व्यतीत हुआ स्वाधीनता संग्राम में उनका अपूर्व योगदान था ऐसे पवित्र देश सेवक धीरे-धीरे उठते चले आ रहे हैं। जिनकी क्षतिपूर्ति सम्भव नहीं। गत आत्मा को मेरी श्रद्धांजलि अर्पित हो।

अध्यक्ष, आस्था
वाराणसी

रघुनाथ नाथ सरीन
१५-११-७१

उस दिन मैं गांधी आश्रम में खादी खरीद रहा था, वहीं मुझे ज्ञात हुआ आज संतशरण जी मेहरोत्रा हम लोगों के बीच से चले गये, दानों एक कांग्रेस कार्यकरता होने के नाते स्वाधीनता संग्राम काल से ही परिचय था किन्तु इधर कई वर्षों से अभिमन्यु पुस्तकालय का मंत्री चुना गया तब से उनसे अधिक सम्पर्क हो गया था उनकी कर्म निष्ठा और निःस्वार्थ सेवाएं हम जनसेवकों के लिए प्रेरणा दायक होगी।

संत शरण मेहरोत्रा का पार्थिव शरीर आज हमारे बीच में न रहा किन्तु उनकी स्मृति हमलोगों के मानस पटल पर सदैव बनी रहेगी। वाराणसी के तो सज्जनता प्रति मूर्ति थे हमारे बीच में उनका अभाव सदैव खटकेगा। मैं संस्था तथा मैं अपनी ओर से श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

अलखनाथ यादव

मंत्री अभिमन्यु पुस्तकालय, वाराणसी

इस अवसर पर हम अपने प्रमुख सहयोगी संस्था के भू० पू० अध्यक्ष तथा स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी कर्मठ देश सेवक, संत शरण मेहरोत्रा जिनका गत ६ नवम्बर १९७१ को देहावसान हो जाने से संस्था अपूर्णीय क्षति हुई है। संस्था दिवंगत आत्मा को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उनके परिवार के साथ समवेदना प्रकट करती है।

दिव्य मन्दिर

आओ इस सुन्दर मन्दिर में करो बन्धुगण पुण्य प्रवेश।
वर्षा की बूंदों से धुल कर स्वच्छ हुआ है इसका वेश॥
नहीं किया मानवी करों ने इस नव मंदिर का निर्माण।
निर्मल नील गगन तल में है इसका पावन शिखर महान॥

+ + + +

नहीं नुकीली छत भड़कीली या तालों से रक्षित द्वार।
नहीं जालियों से गवाक्ष की छिपा तारकों का शृंगार॥
हैं प्रशस्त पथ बने यहां पर, नहीं किसी को कोई रोक।
निशि में दीप नहीं, वेदी को जग-मग करता चन्द्रा लोक॥

+ + + +

स्वप्न जगत में होता जैसे मूक वस्तुओं का निर्माण।
निर्मित हुआ उसी विधि विभु की आज्ञा से यह देवस्थान॥
उठकर इसका शिखर भूमि में हुआ परम अनन्त सुविशाल।
तुंग-स्तंभ रजत मय दधि से छूते नभ मण्डल का भाल॥

+ + + +

सुरभि पत्रों की सुगंध है चंदन की मृदु मधुर सुवास।
किसी अलौकिक दिव्य सुरभि का है इसके मंडप में वास॥
इसके हवन कुण्ड से लेकर अनुपम औषधियों की गंध।
वितरित करता पवन जगत में कर सुखी लोक निर्बन्ध॥

+ + + +

स्वर्ण किरण-रंजित छविमय यह निर्भयता का अनुपम धाम।
करते ही इसमें प्रवेश नर पाता है अविरल विश्राम॥
कौन बता सकता है किसने इस रहस्य का पाया ज्ञान?
आकर आप भ्रमण करते हैं इसमें प्रतिदिन हरि भगवान॥

इस देवल के पावन थल में उठता जो अनुपम संगीत।
गा न सका मानव-मंदिर में अब तक वैसा गीत अतीत॥
नभ चुंबित सुमधुर ध्वनि इसकी सुरभित छाया बन साकार।
शान्ति सहित तमके संग लाती निद्रा का अनुपम उपहार॥

रमापति शुक्ल
४४/१६८ रामापुरा, वाराणसी

————

वन्दना-गीत

ओ मरकतकी श्यामल प्रतिमे,
ज्योतिर्मयि जगदम्बे !
शक्ति-स्वरूपिणि शिवे सनातिनि,
शुभ वरदायिनि वन्दे !

दयोमयी माँ ! निखिल भुवन,
तेरे पद का अनुकारी।
तुम्हीं सृजन - संगीत मधुर
वह नृत्य तुम्हीं संहारी।

सिन्धु अगम, नभ - रश्मि अगोचर
विथकित तन - मन हारे।
अशुभ - तरंग निराश्रित अंतर
शाश्वत मंत्र बिसारे।

ज्योति, ज्योति दे ओ विमर्शिनी,
आवृत सकल उपायन।
तेरी सुरभि तुझे अर्पित
प्रति ऋतु, प्रति स्वर, प्रति गायन।

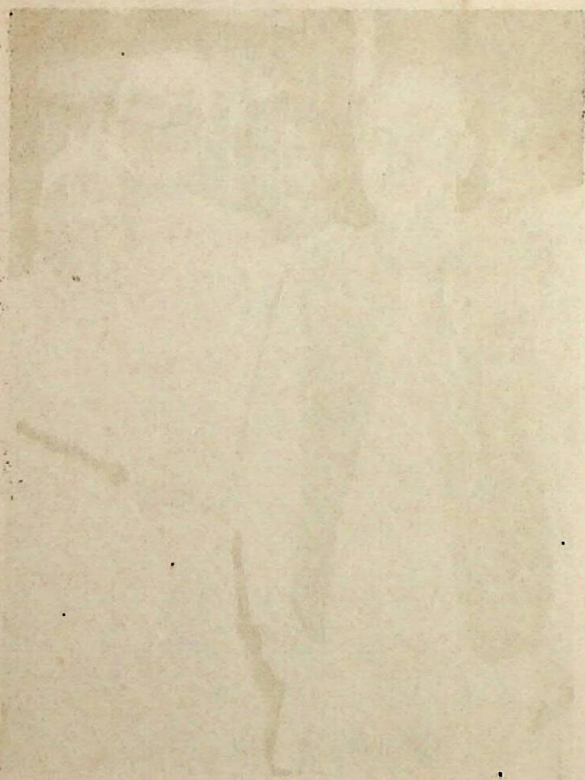
—बुद्धिनाथ मिश्र





दिनांक १८-८-१९७१ को

अभिमन्यु पुस्तकालय के उपरी नवनिर्मित सभाकक्ष के उद्घाटन समारोह के अध्यक्ष उ० प्र० के भूतपूर्व मुख्य मन्त्री श्री चन्द्रभानु गुप्त। स्वागत के समय का चित्र बायें से—पुस्तकालय के उप-सभापति श्री गोपाल लाल वर्मन (जाकिट पहने हुए), दायीं ओर श्री चन्द्रभानु गुप्त (हाथ में माला लिये हुए) पीछे प्रो० श्री मुकुट विहारी लाल (टोपी पहने हुए)



भगवान् राघवेन्द्र के दत्तकपुत्र

लेखक—पं० जयकान्त झा

भगवान् ने किसी को अपना दत्तक पुत्र बनाया था, यह जानकर बहुत से लोग आश्चर्यान्वित हो उठेंगे। रामचरित मानस का ध्यानपूर्वक अवलोकन करने से इसका स्पष्ट प्रमाण मिलता है।

भगवान् भक्त के वश में होते हैं और सदैव उनकी इच्छा पूरी करते हैं। अपने सुग्रीव से बालि की कुटिलिता की सभी बातें सुनकर दीनों पर दया करने वाले श्री रघुनाथ जी की दोनों भुजाएं फड़क उठीं —

सुनि सेवक दुख दीन दयाला।
फरकि उठीं द्वै भुजा बिशाला॥

और तदनन्तर उन्होंने सुग्रीव से प्रतिज्ञा की :—

सुनु सुग्रीव मैं मारिहउँ,
बालिहि एकहि बान।
ब्रह्म रुद्र सरनागत,
गएँ न उबरिहि प्रान॥

और प्रतिज्ञानुसार भगवान् ने तानकर बालि के हृदय में बाण मारा :—

बहु छलबल सुग्रीव कर
हियँ हारा भय मानि॥
मारा बालिहि राम तब
हृदय माझ सर तानि॥

वीर बालि प्राण त्यागने को तैयार थे। भगवान् के सामने देखकर प्रश्न किया।

धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं।
मारेहु मोहि ब्याध की नाईं॥
मैं बैरी सुग्रीव पिआरा।
अवगुन कवन? नाथ मोहि मारा॥

भगवान् ने नाना विधि से बालि की शंकाओं का समाधान करते हुए अपने हाथ से उनका सिर स्पर्श किया और कहा कि तुझे मारता कौन है ? मैं तुम्हारे शरीर को अचल कर दूं, तुम प्राणों को रखो :—

सुनत राम अति कोमल बानी।
बालि सीस परिसेउ निज पानी॥
अचल करौं तनु राखहु प्राना।
बालि कहा, सुनु कृपा निधाना॥

स्वाभिमानी बालि सुन्दर अवसर पाकर कहने लगे :—

जन्म-जन्म मुनि जतनु कराहीं।
अन्त राम कहि आवत नाहीं॥
जासु नाम बल संकर कासी।
देत सबहि सम गति अविनासी॥
मम लोचन गोचर सोइ आवा।
बहुरि कि प्रभु अस बनहि बनावा॥

"मुनिगण प्रत्येक जन्म में अनेकों प्रकार के साधन करते हैं। फिर भी अन्त काल में उनके मुखसे "राम" नहीं निकलता। जिनके नामके बल से शंकरजी काशी में सबको समान रूप से अविनाशी गति (मुक्ति

देते हैं, वह श्री रामजी स्वयं मेरे नेत्रों के सम्मुख उपस्थित हैं। प्रभो ! क्या ऐसा संयोग फिर कभी बन पड़ेगा ?"

पुनः बालिजी भगवान् की स्तुति करते हुए कहते हैं :—

सो नयन गोचर जासु गुन
नित नेति कहि श्रुति गावहीं
जिति पवन मनगो निरस कार।
मुनि ध्यान कबहुँक पावहीं ॥
मोहि जान अति अभिमान बस
प्रभु कहेउ राखु शरीरहो।
अस कवन सठ हठि काटि
सुरतरु बारि करहि बबूरई ॥

"श्रुतियाँ नेति - नेति कहकर निरन्तर जिनका गुणगान करती हैं, तथा प्राण और मन को जीतकर एवं इन्द्रियों को विषयों के रस से सर्वथा नीरस बनाकर—मुनिगण ध्यान में जिनको कभी क्वचित् ही झलक पाते हैं, वे ही प्रभु (आप) साक्षात् मेरे सामने प्रकट हैं। आपने मुझे अत्यन्त अभिमानवश जानकर यह कहा कि तुम शरीर रख लो। परन्तु ऐसा मूर्ख कौन होगा जो हठपूर्वक कल्पवृक्ष को काट-कर उससे बबूर के पेड़ लगावेगा ? (अर्थात् पूर्णकाम बना देने वाले आपको छोड़कर इस नश्वर शरीर की रक्षा चाहेगा)"

बालिजी अब भगवान् से वरदान मांगते हैं :—

अब नाथ करि करुणा बिलोकहु
देहु जो बर मागऊँ।
जेहि जोनि जन्मौं कर्मबस
तहँ राम - पद अनुरागऊँ ॥

"हे नाथ ! मुझे तन का मोह नहीं, आप दया करके यह वरदान दें कि जिस-जिस योनि में कर्मवश मुझे जाना पड़े, आपके श्रीपद में अनुराग बना रहे ॥"

दूसरी चाह और है :—

यह तनय मम सम बिनय बल,
कल्यान प्रद प्रभु लीजिए।
गहि बाँह सुर-नर-नाह अंगद,
दास आपन कीजिए ॥

"हे कल्याणमय प्रभो ! मैं तो श्रीचरण के समक्ष होते ही मुक्त हो गया। मेरे तन से उत्पन्न मेरा तनय अंगद जो विनय और बल में मेरे समान है, आज अनाथ हो रहा है। हे देवता और मनुष्यों के नाथ ! बाँह पकड़कर इसे शरणागति दें और इसे सनाथ कर अपना दास बनाइये।"

इस प्रकार तन और तनय दोनों से निश्चिन्त होकर प्रभुचरणारविन्दों का ध्यान करते हुए बालि ने भगवद्धाम को प्रयाण किया।

राम चरण दृढ़ प्रीति कर,
बालि कीन्ह तनु त्याग।
सुमन माल जिमि कंठ ते,
गिरत न जानइ नाग ॥

बालि की स्त्री तारा को इस दत्तक संस्कार की प्राथमिक क्रिया का पता न होने के कारण वह रुदन करते समय कह रही थी :—

"अंगद कहँ कछु कहन न पायउ"

किन्तु अंगद के लिए बालि वह प्रबन्ध कर गया था, जो कोई पिता कभी नहीं करता। मृत्युलोक में तो पिता की मुक्तिका

साधन पुत्र को माना गया है, पर यह एक ही उदाहरण था जहाँ अपनी सद्गति के साथ एक भक्त अपने पुत्र को भी भगवान् के समर्पण कर उनकी गोद में बैठा गया था।

अंगदने तत्काल युवराज पद प्राप्त किया—भगवान् राघवेन्द्रने (जो स्वयं युवराज नहीं बन सके) अपने गोद में बैठाये आश्रितको युवराज बना दिया —

लछिमन तुरत बुलाए,
पुरजन विप्र समाज।
राजु दीन्ह सुग्रीव कहँ,
अंगद कहँ युवराज॥

भगवान् राघवेन्द्र की सेवा दत्तक पुत्र अंगदने भिन्न-भिन्न अवसरों पर की, इस पर भी थोड़ा दृष्टिपात करना आवश्यक है :—

श्रीकृष्णजी ने द्वापर में (कौरवों-पांडवों में समझौता कराने के लिए) जिस महत्व-पूर्ण कार्य का सम्पादन किया था, उसी कार्य को (भगवान् राम द्वारा सीता अनु-सन्धान समिति का अध्यक्ष बनाये जाने पर) युवराज अंगद ने सरलतापूर्वक किया।

मंत्रियों की सलाह पर बालिकुमार अंगद-दूत बनाकर भगवान् द्वारा रावण की सभा में भेजे गये :—

नीक मंत्र सबके मन माना।
अंगद सन कह कृपानिधाना॥
बालितनय बुधि बल गुन धामा।
लंका जाहु तात मम कामा॥

अंगद के प्रस्थान करते समय भग-वान् का अपने दत्तक पुत्र की बुद्धि एवं चातुरी पर कितना विश्वास है—यह भी, विचारणीय है—

बहुत बुझाइ तुम्हहि का कहऊँ।
परम चतुर मैं जानत अहऊँ॥
काजु हमार तासु हित होई।
रिपु सन करेहु बतकही सोई॥

प्रभु चरणारविन्द का ध्यान हृदय में धारण कर वीर अंगद रवाना हुए और रावण की सभा में (मतवाले हाथियों के झुंड में सिंह की भाँति) निशंक होकर (शिष्टाचार के नाते) शिर नवाकर बैठ गये :—

जथा मत्त गज जूथ महुँ,
पंचानन चलि जाइ।
राम प्रताप सुमिरि मन,
बैठ सभाँ सिरु नाइ॥

सारी सभा जमी हुई थी। रावण से वार्तालाप के मध्य ही अंगद ने कटकटाकर इतने जोर से हाथ पटका कि पृथ्वी हिल उठी और सभी सभासद भय रूपी पवन से ग्रस्त होकर भाग चले।

कटकटान कपि कुंजर भारी।
दुहुँ भुजदंड तमकि महि मारी॥
डोलत धरनि सभासद खसे।
चले भाजि भय मारुत—ग्रसे॥

पुनः रावण गिरते-गिरते सँभलकर उठा। उसके अत्यन्त सुन्दर मुकुट पृथ्वी पर गिर पड़े। कुछ तो रावण ने उठाकर अपने सिरों पर सँभालकर रख लिया और चार मुकुटों को उठाकर अंगद ने ऐसा फेंका कि भगवान् के समक्ष धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष जा खड़े हुए। एक भक्त प्रभु-प्रताप का आश्रय लेकर एक पापी को

सम्पदा आकाश मार्ग से भगवान् के सम्मुख उपस्थित कर रहा था—सिवाय भगवत्पुत्र के यह किसका साहस हो सकता था ?

गिरत सँभारि उठा दसकंधर।
भूतल परे मुकुट अति सुन्दर॥
कछु तेहिं लै निज सिरन्हि सँवारे।
कछु अंगद प्रभु पास पवारे॥

रावण की कुटिलता की आलोचना करते हुए बालितनय अंगद ने (प्रभु प्रताप के बल पर) दूसरा साहसिक कार्य रावण की सभा में पैर रोककर किया—

समुझि राम प्रताप कपि कोपा।
सभा माँझ पन करि पद रोपा॥

और अकेले एक व्यक्ति के इस पद-रोपण की शक्ति का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि मेघनाद जैसे करोड़ों वीर योद्धा बानर का चरण न उठा सकने के कारण लज्जा के मारे सिर नवाकर बैठ गये।

कोटिन्ह मेघनाद सम,
सुभट उठे हरषाइ।
झपटहिं टरै न कपि चरन,
पुनि बैठहिं सिर नाइ॥

पुत्र होने के नाते वीर अंगद अपने पिता भगवान् राघवेन्द्र की ओर से क्या प्रतिज्ञा करते हैं—यह भी द्रष्टव्य है।

जौं मम चरन सकसि सठ टारी।
फिरहिं रामु, सीता मैं हारी॥

बहुत प्रयत्न के बाद जब कोई तिल भर भी पाँव सरका न सका—परीक्षा हो चुकने पर बुद्धि की परीक्षा हुई—अंगद के ललकारने पर जब रावण सिंहासन से उठकर अंगद का चरण पकड़ने लगा, तब बालितनय ने कहा कि मेरा चरण पकड़ने से तेरा उद्धार नहीं होगा। तुम्हारा उद्धार तो भगवान् की शरण में जाने से होगा।

कपि बल देखि सकल हिय हारे।
उठा आपु कपिके परचारे॥
गहत चरन कह बालिकुमारा।
मम पद गहें न तोर उबारा॥

अंगद द्वारा रावण - उद्धार का मार्ग निर्देशन कितने सुन्दर ढंग से किया गया है—यह भी विचारणीय है : —

दसन गहहु तृन कंठ कुठारा।
परिजन सहित संग निज नारा॥
सादर जनकसुता करि आगे।
एहि विधि चलहू सकल भय त्यागे॥

अर्थात् दाँतों में तिनका दबाओं, गले में कुल्हाड़ी डालो और कुटुम्बियों सहित अपनी स्त्रियों को साथ लेकर, आदरपूर्वक जानकी जी को आगे करके—(इस प्रकार सब भय त्यागकर) चलो—

और प्रणतपाल रघुवंशमणि के सामने—त्राहि माम् त्राहि माम् चिल्लाते चलो।

भगवान् आर्त्तवचन सुनकर तुम्हें अभय कर देंगे।

प्रनतपाल रघुबंसमनि,
त्राहि त्राहि अब मोहि।
आरत गिरा सुनत प्रभु,
अभय करैगो तोहि॥

शत्रु को भी हित की बात बतलाते हुए बुद्धि और बल का ऐसा सुन्दर प्रदर्शन, कहीं अन्यत्र देखने को नहीं मिलता।

अब थोड़ा उस समय का दृश्य भी अवलोकन करने योग्य है जब लंका-विजय के पश्चात् अयोध्या में लौटने पर भगवान् राम का राजतिलक हो चुका और सभी सेवकों एवं भक्तों को अपने अपने घर लौटने का आदेश हुआ (लक्ष्मण जी ने विभीषण को, भरत जी ने सुग्रीव को, स्वयं भगवान् ने नल नीलादिकों वस्त्राभूषण पहनाकर विदा किया।

अंगद चुपचाप बैठे रहे—उनकी अनन्य प्रीति का ध्यान करके प्रभु भी चुप रह गये।

अन्त में सबके चले जानेके बाद बालि-तनय ने भगवान् को साष्टांग अभिवादन करते हुए सजल नयन से विनती की :—

सुनु सर्वग्य कृपा सुख सिंधो।
दीन दयाकर आरत बन्धो॥
मरती बेर नाथ, मोहि बाली।
गयउ तुम्हारेहि कोंछ घाली॥
असरन-सरन बिरदु सभारी।
मोहि जनि तजहु भगत हितकारी
मोर तुम्ह प्रभु गुरु पितु माता।
जाउँ कहाँ तजि पद जलजाता॥
तुम्हहि बिचारि कहहु नरनाहा।
प्रभु तजि भवन काज मम काहा॥
बालक ग्यान बुद्धि बल हीना।
राखहु सरन नाथ, जन दीना॥
नीचि टहल गृह कै सब करिहउँ।
पदपंकज बिलोकि भवतरिहउँ॥
अस कहि चरन परे प्रभु पाही।
अब जनि नाथ कहहु गृह जाहीं॥

अंगद के विनम्र वचन सुनकर करुणा सागर प्रभुके कमलनेत्रों में प्रेमाश्रु भर आये। भगवान् हृदय से लगा लिये कुछ कह न सके। दोनों के नेत्रोंसे जलकी धारा बह रही थी और सभी स्तब्ध थे।

अंगद बचन बिनीत सुनि,
रघुपति करुना सींव।
प्रभु उठाइ उर लायउ।
सजल नयन राजीव॥

अब भगवान को स्मरण आया—"मैं बन में था, अभी दत्तक विधि पूरी नहीं हुई है। दत्तक लेने पर पिता अपने वस्त्रा-भूषण उतारकर पुत्र को पहनाता है, केवल पिताओं के आदान से विधि पूरी नहीं होती।"

अत: भगवान् ने अपने हृदयकी माला वस्त्र और मणि बालितनय को पहना-कर एवं बहुत प्रकार से समझा बुझाकर उनकी विदाई की —

निज उर माल बसन मनि,
बालि तनय पहिराइ।
बिदा कीन्हि भगवान तब,
बहु प्रकार समुझाइ॥

बिरला ही कोई ऐसा भाग्यशाली हुआ होगा जिसे भगवान् अपने वसन, निज उरमाला, मणिमुक्ता, सिरका पाग—सब ऐश्वर्य सौंपकर स्वयं उघारे हो गये हों। दत्तक संस्कार की अनोखी झाँकी देखकर सभी मंत्र-मुग्ध हो गये। दत्तकपुत्र (अंगद) राम बनकर खड़े हैं, राम सब कुछ सौंपकर रोते खड़े हैं। प्रभु-कृपा पुत्र पर बरसती जा रही है।

अंगद की सेवाओं एवं उनके प्रेम का स्मरण करके भरतजी, शत्रुघ्नजी एवं लक्ष्मणजी के साथ उन्हें पहुंचाने चले। अंगद

का हृदय प्रेम-मग्न है और फिर फिरकर भगवान् राघवेन्द्र की ओर देख रहे हैं :—

भरत अनुज सौमित्रि समेता।
पठवन चले भगत कृत चेता॥
अंगद हृदय प्रेम नहिं थोरा।
फिरि फिरि चितव रामकी ओरा॥

किसी को यह सम्मान उपलब्ध नहीं हुआ था। अयोध्याके राजमार्ग से भगवान् राम वस्त्राभूषण धारण किये हुए अंगदचले जा रहे हैं। अयोध्यावासी भगवान् रामके अनुरूप अंगद को देखकर बलिहार हो रहे हैं। देवतालोग पुष्प-वर्षा कर रहे हैं। एकबार सभी भ्रम में पड़े हुए मंत्र-मुग्ध की भांति दत्तक पुत्र बालितनय की शोभा पर निछावर हो रहे हैं।

सचमुच भगवान् की कृपा से अयोध्या में सम्पन्न होने वाली यह दत्तक-विधि अतुलनीय थी—तन को सद्गतिके अनन्तर अवशेष तनय का जीवन सफल किया गया-मुकुट के बदले मुकुट, राज्य-श्री के बदले राज्यश्री देकर।

भगवान् की कृपा-माधुरी का स्मरण करते हुए अंगदजी किष्किन्धा की ओर गमन कर रहे हैं —

प्रभु रुख देखि विनय बहु भाषी।
चलेउ हृदय पद पंकज राखी॥
अति आदर सब कपि पहुँचाए।
भाइन सहित भरत पुनि आए॥

इस प्रकार के आदर्श से भगवान् मर्यादा पुरुषोत्तम राघवेन्द्र रामने स्पष्ट कर दिया कि भक्त शुद्ध हृदय से जिस किसी रूपमें भगवान् को प्राप्त करना चाहें, वे सदैव उसी रूप में प्राप्त होकर उसे सनाथ कर देते हैं।

प्रभु की महिमा के सम्बन्ध में ये शब्द सतत स्मरण रखने योग्य है :—

मसकहि करइ बिरंचि प्रभु,
अजहि मसक ते हीन।
अस बिचार तजि संसय,
रामहि भजहिं प्रबीन॥

—इस प्रामाणिक लेख में मानस के मूलभूत सिद्धान्तों का बड़ी बुद्धिमत्ता से प्रतिपादन किया गया है। अंगद जी को राम का दत्तकपुत्र बनाने का मार्मिक प्रमाणों से तुलसीदास जी के रचित पद्यों में ही प्रस्तुत कर जनोपयोगी आदर्श दिखाने में लेखक को सफलता हुई है।

—सम्पादक

'स्वामी विवेकानन्द और जाग्रत भारत'

लेखक—पं० गयादीन त्रिपाठी

स्वामी विवेकानन्द भारत के एक ऐसे वरद पुत्र थे, जिन्होंने देश की क्रान्ति के संचालन में महत्वपूर्ण योग दिया था। उस महामानव ने सन् १८६८ ई० में ही यह भविष्यवाणी करते हुए चेतावनी दी थी कि "अगर अंग्रेज भारत छोड़कर चले जायेंगे तो चीन के भारत पर आक्रमण करने की प्रत्येक संभावना रहेगी। अपने "दि मास्टर ऐज आई सा हिम" नामक पुस्तक में सिस्टर निवेदिता ने जैसा कहा है, कि, 'वे भारतीय विचारधारा से सदैव अनुप्राणित रहते थे'। वे राष्ट्र-निर्माता नहीं अपितु व्यक्तिनिर्माण पर अधिक बल देते थे और यही उनका मुख्य कार्य था। वे अपनी मातृभूमि के महान उपासक थे। उनका प्रधान लक्ष्य था, भारतवासियों की आत्माको जाग्रत करना। उनका कहना था कि मेरे आदर्श की व्याख्या मानव को ईश्वरत्व का ज्ञान कराना, जीवनकी प्रत्येक गति में उसे चरितार्थ करना और इस आदर्श को उन्होंने भारतवर्ष में ही नहीं वरन् विश्व के कोने-कोने में प्रचारित किया। उनका कथन था कि केवल भारत की आध्यात्मिकता ही मानव-समाज का संरक्षण कर सकती है। और यही कारण था कि उन्होंने भारत की भावी प्रगति का दिग्दर्शन उसी समय कर लिया था।

पूर्ण सभ्यता के विकास के लिए विश्व भारत की ओर देख रहा है। जो आध्यात्मिक संस्कृति का मूल स्थान है। भारतवासियों के लिए यह गौरव की बात है कि वे सामर्थ्य से जीवन की समस्याओं से आकुल विश्व के मानव को ज्ञान का प्रकाश दे रहे हैं। इसीलिए विवेकानन्द की यही पुकार रही है, कि भारतवासियों उठो और अपनी आध्यात्मिक शक्ति से विश्व पर विजय प्राप्त करो। राष्ट्रीय जीवन की चेतना का एक ही आधार है। और वह है उपनिषदों में वर्णित भारतीय विचार-धारा द्वारा विश्व-विजय प्राप्त करना। विवेकानन्द के शब्दों में उपनिषद शक्ति की विशाल खानें हैं जिनके द्वारा सारे विश्व पर अधिकार किया जा सकता है। तथा उसे सबल एवं सशक्त बनाया जा सकता है। तब भारतवासी संसार के उन पीड़ित, पददलित, एवं शोषित वर्ग के मनुष्यों को यह सन्देश दे सकेंगे कि, अपने पैर पर खड़े हो जाओ! शारीरिक मानसिक तथा आध्यात्मिक स्वतंत्रता ही उपनिषद का मूल मंत्र है, यही विश्व के लिए एक महान सन्देश है।

'बलवान बनो और निर्भय रहो!' यही भारतीय नवयुवकों के लिए स्वामी विवेकानन्द का सन्देश था। उन्होंने

बारम्बार कहा कि इसी पृष्ठ - भूमि पर भारत का गौरवशाली भविष्य आधारित है। उपनिषदों में इसी निर्भयता के मूल-मंत्र की व्याख्या है। उनके इन शब्दों में कितना ओज है—मेरे बच्चों ! मैं चाहता हूँ तुम्हारे पुठ्ठे लोहे के और नसें इस्पात के समान हों, जिसके अन्दर मष्तिष्क भी ऐसे हो प्रकार के पदार्थ का हो जो वज्र के समान हो। इस शक्ति के द्वारा इस प्रकार हम ईश्वरत्व की प्राप्ति करें और दूसरों को भी इसकी प्राप्ति में सहायता पहुँचायें। स्वयं बनो और दूसरों को बनाओ, यही हमारा आदर्श होना चाहिये अपने अन्दर के ईश्वरत्व का विकास करो ता संसार की प्रत्येक वस्तु उसके निकट प्रतीत होगी।'

स्वामी विवेकानन्द ने कहा कि भारत शताब्दियों के बाद जाग रहा है। लम्बी रात बीत चुकी है और कष्ट के अन्तिम दिन भी बीत रहे हैं। सोया हुआ जाग रहा है। हमारी भारतमाता लम्बी नींद के बाद जाग रही है। अब कोई भी उसे न तो दबा सकता है, और न सुला ही सकता है। कोई भी बाहरी शक्ति उसे पीछे भी नहीं ढकेल सकता। महान देश की महान आत्मा आग्रत हो चुकी है। अत: मेरे भाइयों ! अब हम कठोर परिश्रम करें। अब सोने का समय नहीं है। हमारे ही परिश्रम पर भारत के भविष्य का निर्माण होगा। उठो, जागो और देखो कि हमारी भारतमाता अपने दिव्य आसन पर बैठी हुई शोभायमान हो रही है। इस

गौरवपूर्ण भविष्यकी प्राप्तिके लिए स्वामी विवेकानन्द ने अपनी दैविक शक्ति से जीवन भर कार्य किया जिसे उन्होंने श्रीरामकृष्ण परमहंस से प्राप्त किया था। इस प्रकार उनकी देश के प्रति असीम अनुराग की गम्भीरता के कारण "उनकी आत्मा की शक्ति को सम्पूर्ण राष्ट्र ने आतमसात किया जिसका परिणाम यह हुआ देश के नवयुवक श्री 'अरविन्द' जैसे राष्ट्रवादी क्रान्तिकारियों के स्वर में स्वर मिलाकर आगे बढ़े। उन्होंने अपना घर द्वार छोड़ा और देश की स्वतंत्रता के लिए अपने रक्त से भारत के स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास के गौरवशाली पृष्ठों को लिखा—'प्रत्येक भारतवासी को यह बात जन्म से ही स्मरण रखना चाहिये कि उसका जीवन अपनी मातृभूमि के लिए अर्पित है।" विवेकानन्द के इन शब्दों में राष्ट्रीयता का मूल मंत्र निहित है। उन्होंने कई बार कहा था "मृत्यु के पश्चात् भी मैं विश्व की भलाई के लिए कार्यरत रहूँगा। ईश्वर से एकाकार होने तक मेरी आत्मा को चैन नहीं मिलेगा। इसीलिए श्री अरविन्द ने कहा था कि 'अगर विवेकानन्द को देखना है तो भारत की एवं उसकी सन्तानों में प्रवेश करके देखो।'

पं० जवाहरलाल नेहरू ने अपने 'डिसकवरी आव इंडिया' नामक पुस्तक में लिखा है, स्वामी विवेकानन्द ने अनेक विषयों पर अपना विचार व्यक्त किया है, लेकिन उनके भाषणों और लेखों में केवल एक ही स्वर गूंजता है, और

वह है—अभय अर्थात् निर्भय रहो-बलवान बनो। एक स्थान पर उन्होंने स्वयं ही कहा था—
कुछ भी शक्ति का संचय करो और पुरुषत्व की प्राप्ति करो। मैं उस धूर्त का भी आदर करता हूँ जिसमें बल और पौरुष है। क्योंकि उसका पौरुष ही उसे एक दिन उसे धूर्तता से विछिन्न कर देगा और वह स्वार्थपूर्ण कार्यों से विरत होकर सत्यका दिग्दर्शन करेगा। रोमारेनाल्ड ने एक ही वाक्य में विवेकानन्द के व्यक्तित्वकी व्याख्या कर दिया है कि वे शक्ति के स्वरूप थे और कार्यशीलता हो उनका, मानव के प्रति सन्देश था।

महान देशभक्त होते हुए भी वे कोरे आदर्शवादी नहीं थे। उन्होंने चरित्र-निर्माण, सदाचार, अनुशासन, तथा बुद्धि, शरीर और आत्मा की सबलता पर अधिक जोर दिया। उनका आदेश था कि मातृ-भूमि के प्रति अनुराग हमारा प्रथम कर्तब्य हैं, धर्म के प्रतिवाद में आज से अधिक उपयुक्त समय और कौन सा होगा। जब हम विवेकानन्द के प्रति कहे गये उत्साह वर्धक शब्दों का स्मरण करे भारत के वीरों साहसी वनो, हिम्मत लो तुम्हे इस बात या गर्व होना चाहिए कि तुम भारतीय हो और गर्व के साथ कह सकते हो कि मैं भारतीय हूँ, प्रत्येक भारतीय मेरा भाई है कहो, अशिक्षित, निर्धन तथा निरासित भारतीय, भारत के ब्राह्मण और उपेक्षित भारतीय मेरे भाई हैं। तुम भूखे और नंगे हो लेकिन उच्च स्वर से कहो कि भारत-वासी मेरे भाई हैं, भारतीयता मेरा जीवन है, भारत के देवी और देवता मेरे उपास्य हैं। भारतीय समाज मेरे जीवन का उद्गम स्थान है और मेरे यौवन की आनन्दभूमि है। जो स्वर्ग से भी अधिक पवित्र है। मेरे भाई, कहो—"भारत की मिट्टी मेरा स्वर्ग है। भारत के हित में ही मेरा हित है और इस प्रार्थना को बारम्बार दोह-राओ-हे विश्व की जननी! मुझे पौरुष वर प्रदान करो। हे शक्ति की देवी मेरी निर्व-लता को दूर करो और कायरता का हनन कर मुझे मानव बना दो!"

अन्य योगियों एवं ऋषियों से भिन्न विवेकानन्द ने धर्म से अधिक मातृभूमि की सेवाको अधिक महत्वपूर्ण वतलाया। अपने सन्देश में उन्होंने भारतवासियों से कहा कि अन्य धर्मों का परित्याग करो। उन्होंने देश के नवयुवकों को जागरण का नया सन्देश दिया—उठो, जागो, और निर्दिष्ट लक्ष्य तक पहुँचने के पूर्व रुको मत। वीर बनो और डरो मत। तब हमारा कार्य पूरा होगा। उठो, जागो, क्योंकि तुम्हारे देश को महान त्याग की आवश्यकता हैं। इसे केवल वे ही नवयुवक कर सकते हैं जो उद्योगी, बलवान, सुगठित और बुद्धिमान हैं। वह कार्य क्या है? वह है, मातृभूमि को विदेशी शासकों से मुक्त करना। आज हमारा यह प्रधान कार्य है, कि हम अति-क्रमणकारी को बाहर निकाल दें। डरो मत, क्योंकि मानव—इतिहास वतलाता है कि सारी शक्ति जनता में ही निहित है जिससे संसार के महापुरुषों का प्रादुर्भाव हुआ। किसी की ताकत से डरो मत! तुम

आश्चर्यजनक कार्य करोगे। जिस क्षण तुम भयभीत हो जाओगे, तुम्हारा अस्तित्व समाप्त हो जायेगा। केवल भय ही संसार की सभी मुसीबतों का कारण है। और भय हीं हमारे संताप का भी कारण है। निर्भयता द्वारा तो स्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है।

देशभक्ति के बाद विवेकानन्द धर्म को महत्व देते हैं—एक ऐसे नये धर्म को जिसमें व्यक्ति सेवक और सेव्य दोनों हैं मानव जाति की सेवा ईश्वर की सच्चीसेवा हैं। उन्होंने अपने महान गुरु रामकृष्ण परमहंस के आदर्शों तथा सिद्धान्तों को कार्य रूप में परिणत कर दिया और बताया कि प्रत्येक व्यक्ति में ईश्वर का वास है। "जीव ही शिव है" यह धर्म का एक नवीन स्वरूप था जिसके प्रणेता विवेकानन्द थे। इस नये धम को प्रचारित करते हुए स्वामी जी ने जोरदार शब्दों में घोषित किया कि—मानव की सेवा करना ही सबकुछ है। ऐ मूर्ख, जीवित ईश्वर एवं उसकी चिरन्तन भावनाओं की उपेक्षा करता है जिससे संसार मरा पड़ा है।

धर्म-निरपेक्षता और सर्व धर्म की एकता के विचार उन्होंने सर्वप्रथम शिकागो के विश्व-धर्म-सम्मेलन में ११ सितम्बर १८९३ में—व्यक्त किया था। वहां पर उन्होंने कहा था कि—अगर कोई यह सोचता है कि यह एकता किसी एक धर्म को बढ़ाने और दूसरे धर्म का नष्ट करने से हो सकती है तो मैं उनसे यह कहता हूँ कि यह असंभव है। इसाइयों को हिन्दू बनाने की आवश्यकता नहीं और बौद्धों को ईसाई बनाने को आवश्यकता नहीं है, बल्कि प्रत्येक एक दूसरे की शक्ति को ग्रहण करें और अपने-अपने व्यक्तित्व का रक्षा करें तथा अपने धर्म के नियमों के अनुसार आगे बढ़ें। विवेकानन्द को धर्म-निरपेक्षता का सिद्धान्त केवल भारत पर ही नहीं, पूरे विश्व पर लागू होते हैं। भिन्नता में एकरूपता का प्रतिपादन ही, भारतीय-दर्शन का मूल तत्व हैं।

विवेकानन्द एक महान कवि भी थे। उनका संस्कृत, हिन्दी, बंगला, तथा अंग्रेजी पर समान अधिकार था। चाहे धर्म के क्षेत्र में अथवा साहित्य के सृजन में उन्होंने अपनी आराध्य देवी-भारत-माता का कभी भी विस्मरण नहीं किया।

एक ऐसे महामानव को हम श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

—वास्तव में इस महत्वपूर्ण लेख में भारत ही नहीं, समस्त मानवता को जाग्रत होकर आत्मोन्नति करने का सन्देश दिया गया है। स्वामी विवेकानन्द जी एक अवतारी पुरुष थे। उन्होंने भारत के भविष्य का नवीनतम मानचित्र खींच कर रख दिया जो वेदों तथा उनिषदों में पहले से बनाकर रखा गया था। —सम्पादक

—:o:—

जिज्ञासा

लेखक—श्री बालकृष्ण जोशी "दर्शन" काशी

आज घोर तमान्धमयी काल निशा बेला में केवल भारत ही नही सो रहा है, अपितु सारा संसार निस्तब्ध है, निःशब्द है, सुप्त है और क्रमशः निष्प्रभ हुआ जा रहा है। आज मौनी अमावस्या का सर्वत्र साम्राज्य है। जब सभी सो रहे हैं तो भला तुम कौन हो जो अनवर्त अबाधगति से स्वकर्मलीन हो? जिस प्रकार वात्सल्यमयी माँ अपने नटखट शिशु को प्यार भरी थपकियाँ देकर खट्टी-मीठी लोरियाँ सुनाकर सुला देती है और उसके जागने की अवधि से पूर्व ही समस्त गृहकार्य शेष कर लेने की वेगवती इच्छा से अत्यन्त द्रुतगति किन्तु आहट विहीन हड़बड़ाहट के साथ स्वकार्य में लिप्त होती है—ठीक वैसे ही तूने भी स्वेच्छया जगत् शिशु को मीठी थपकियाँ देकर सुला तो नहीं दिया है? क्या वर्तमान निविड़ान्धकार मयी चादर भी ओढ़ा दी है? सच बता यह सब तूने ही किया है न, और अब तावड़तोड़ कार्यरत हुवा है। तू कौन है? अरे सूर्योदय से पूर्व ही उषा का स्वागत-थाल सजाने के लिए अगणित सुमन खिला दिये हैं, उन्हें तोड़कर पथ सजाने का कष्ट भी ऊषा को उठाने की आवश्यकता न हो। शायद इसीलिए पारिजात, शिरीष, टेशुवा बिखेरा है तूने सूने पथ पर। भ्रमण जागरण के पूर्व ही तूने कलियों को मधुपूरित कर छोड़ा है। आम्रमञ्जरी रसगन्ध युक्तकर डाला है ताकि प्रभात-गीत गाती हुई कोकिला स्वयं भी मादक रस पी सके। मैंने तुम्हें कार्यरत देख लिया है बन्धु। आवश्यकता से पूर्व हो आविष्कार व्यवस्था तेरी है जो शाश्वत सत्य भी है। आवश्यकता आविष्कार की जननी है यह मदान्धोक्त-मिथ्या प्रलाप नहीं है क्या? मिथ्या और असार संसार जिसे कहा गया है, उसमें नित्य नवीन सत्य भरने वाले कणकण को सरस बनाने के तेरे सारे प्रयास नहीं हैं क्या? फिर संसार असार कैसा? तू यदि सत्य है और निर्माता है, तो तेरा निर्माण भला मिथ्या क्यों? बोलो, बोलते क्यों नहीं? बताते क्यों नहीं? चुप्पी क्यों? समझता हूँ इसलिए कि कहीं मौनभङ्ग न हो जावे, जगत जाग न जावे कहीं! क्या तुम्हीं वह निष्ठुर भी तो नहीं हो चाहते हो कि तेरे प्रिय शिशु की यह घोर निद्रा चिर निद्रामें परिणित हो जावे। नहीं नहीं, ऐसा शायद तुम नहीं कर सकोगे। यदि कर ही बैठे तो?

पछताओगे, जब कुछ भी शेष न रहेगा तेरी भाव भरी अभिव्यक्ति को सराहेगा कौन? तेरी समस्त सर्जना-शक्ति भी तो निष्फल हो जावेगी।

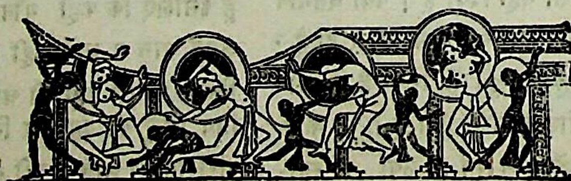
बोलो, उत्तर दो तुम कौन हो ? मौन तोड़ दो। भङ्ग करो नीरवता, जागने दो इस सुप्त मानवता को प्रभात की प्रतीक्षा का धैर्य नहीं है। हर्ज क्या है यदि ब्राह्म मुहूर्त में ही जाग पड़े, तेरा प्यारा मानव शिशु !

हे अखण्ड सनातन परिश्रमी कलाकार ! तेरी सृष्टि में मानवता सोती रहे और तू सर्जनारत ही रहे तो रहाकर भले ही किन्तु तेरी सफल कल्पना साकार होकर भी नहीं के समान नश्वर सी रहेगी। सूर्यास्त से पूर्व ही जो तेरा शिशु सो रहा है, उसे प्रभात से पूर्व ही जगा दे, ताकि नेत्र खुलते ही वह तेरी सृष्टि की महानता देख सके। तभी वह सारी उपद्रवी बुद्धियाँ भूल बैठेगा और तभी वह समझ पावेगा कि इस सत्य जगत् को मिथ्या कहना भूल है। तभी वह देख सकेगा एक अखण्ड कार्य कुशल कलाकार को। शृजन रत अलौकि कलाकार को।

मेरे लिए मुझे नहीं। जगजागरण के लिए, जागतिक प्राणिमात्र के हित के लिए, फिर एक बार मैं पूछ रहा हूँ। हे कलाकार बता दो तुम कौन हो ?

—इस 'जिज्ञासा' में सार्वभौम सृष्टिकर्ता से ही भावपूर्ण जिज्ञासा की गयी है कि तुम अपने जगत् के लालन - पालन के स्वयं उत्तर-दायी हो, अतः उसे समयानुकूल बनाने का भी काम तुम्हारा ही है। फिर क्यों नहीं ध्यान देते !

—सम्पादक



क्या आप जानते हैं ?

१—कि संसार के सात महान आश्चर्यों में निम्नलिखित प्रसिद्ध हैं :—

(क) मिश्र देश का पिरामिड

(ख) रोम के इफ़ेसस स्थान पर डायना का मन्दिर

(ग) बैबिलोन का झूलता हुआ बगीचा

(घ) ग्रीस में ओलम्पिया नामक स्थान पर ज्यूपिटर की मूर्ति

(ङ) एशिया माइनर में मोसूलस का मकबरा

(च) रोड्स की विशाल मूर्ति

(छ) अलेक्जेंड्रिया के पास फारोस द्वीप का प्रकाश स्तम्भ

२—कि संसार का सबसे बड़ा पूँजीपति कैथोलिक धर्म-पंथ का आचार्य पोप-पाल है, जो वेटिकन राज्य का एक मात्र सर्व सत्ताधारी स्वामी है। उसका वेटिकन—महल ससार का सबसे बड़ा महल माना जाता है, जिसमें हजारों बड़े बड़े कमरे हैं। संसार का अनेक बड़ी बड़ा कम्पनियों में पोप की ४० करोड़ रुपये की पूँजी लगी है। शेयरों में पोप का ३०० करोड़ रुपया लगा है। वेटिकन कौंसिल के अधिवेशन पर प्रति सप्ताह २० लाख पौण्ड खर्च आता है।

३—कि विश्व की सबसे बड़ी संसद चीन लोक गणराज्य की राष्ट्रीय विधान सभा है जिसमें लगभग चार हजार सदस्य हैं।

४—कि दुनिया को सबसे पुरानी राजधानी दमिश्क (सीरिया) है जो पिछले पांच हजार वर्षों से लगातार आबाद है।

५—कि विश्व की सबसे अधिक चौड़ी सड़क ब्राजील की राजधानी ब्रेसिलिया में मोनुमेंटल एक्सिस नामक सड़क है जिसकी चौड़ाई डेढ़ मील है।

६—कि संसार की सबसे अधिक व्यस्त सड़क लास एंजेल्स में हार्बर फ्रीवे है जिसपर औसतन ५ लाख गाड़ियां रोज गुजरती हैं।

७—कि दुनिया का सबसे बड़ा महल पेरिस का लोवरे महल है जो ५० एकड़ भूमि पर बना हुआ है। वह १५४६ से १८५७ तक की अवधि में बनकर तैयार हुआ था।

८—कि संसार का सबसे लम्बा फुटपाथ कैलिफोर्निया का स्टेट ट्रेल है जो ३ हजार मील लम्बा है।

९—कि संसार का सबसे शक्तिशाली राडार अमेरिकी सेना के पास है जो दस मील दूर पुरुष और स्त्री के चलने के अन्तर का पता लगा लेता है।

१०—कि संसार का सबसे भारी चुम्बक रूस में है जिसका वजन ५० हजार टन है।

[पं० गयादीन त्रिपाठी द्वारा संकलित]

गर्भपात क्या बापू को अभीष्ट था ?

ले०— श्री हरगोविन्द मिश्र, व्या० सा० आचार्य, साहित्यरत्न

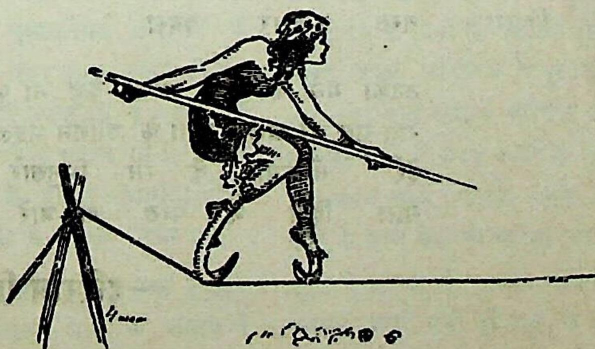
भारतवर्ष धर्मप्राण देश है, धर्म के बिना इस देश का अस्तित्व ही नहीं रहेगा। यद्यपि धर्म के अनेक रूप हैं, तथापि 'अहिंसा परमोधर्मः' पर आधारित 'न हिंस्यात् सर्वभूतानि' इस सिद्धांत की रक्षा इस देश में अवतीर्ण होनेवाले व्यास बाल्मिकी, बुद्ध, दयानन्द, महात्मा गांधी आदि महापुरुष सदा सर्वदा करते आये हैं और तदनुसार स्वयंमपि आचरण करते हुए सर्वसाधारण में इसका प्रचार प्रसार करके ही अपनी कीर्ति का विस्तार किये हैं। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने तो इसी अहिंसा रूपी अमोघ अस्त्र के द्वारा सदियों से पराधीन भारतवर्ष को स्वाधीन तक कर दिया है।

वर्तमान शासकवर्ग भी उन्हीं राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के प्रदर्शित पथ पर चलने का दावा करते हैं और अपने को उनका ही अन्यतम अन्तेवासी मानने में गौरव का अनुभव करते हैं। महात्मा गांधी जो कहना चाहते थे या करते थे, तदनुरूप स्वयमपि आचरण करते थे, किंतु अपने को उनका प्रमुख अनुयायी मानने वाला आज का शासक वर्ग—क्या राष्ट्रपिता गांधी के मूल सिद्धांत अहिंसा से बहुत दूर नहीं हो रहा है? यही कारण है कि अभी हाल में ही कुछ मास पूर्व गर्भपात जैसे अत्यन्त घृणित एवं जघन्य पाप को भी वैध बनाने के लिए लोकसभा में बिल उपस्थित किया गया है। उक्त बिल के अनुसार कोई भी पञ्जीयित (रजिस्टर्ड) डाक्टर—आजकल कुछ विशिष्ट डाक्टरों को छोड़कर अधिकतर डाक्टर कितने योग्य एवं अनुभवी होते हैं, तथा वे आर्थिक आकर्षण के वशीभूत होकर क्या नहीं करते, यह सर्व-विदित है। महिला के इच्छानुसार गर्भपात कर सकता है। यह बिल परिवार-नियोजन योजना के पूर्त्यर्थ लाया जा रहा है। जहां तक हमें ज्ञात है कि संभवतः एकाध देश को छोड़कर अन्य किसी पाश्चात्य देश में भी गर्भपात को वैध नहीं माना जाता। उन पाश्चात्य देशों में भी गर्भपात छिपे लुके ही किये जाते हैं। यद्यपि वे भारत की अपेक्षा कई गुनी संख्या में होते हैं। हमारे धर्म-शास्त्रकारों ने तो इसकी घोर महापापों में गणना की है। इस बिल के पारित हो जाने से भारत में घोर व्यभि-

चार फैल जायेगा, जब कि आजकल सरकार, समाज और धर्म के भय से कुछ हा गर्भपात कराने के समाचार सुनने में आते हैं। आजकल परिवार-नियोजन योजना को सफलता के लिए सरकार करोड़ों रुपये पानी की तरह बहा रही है, लोगों को पारितोषिक तक बांट रही है, किन्तु परिणाम नहीं के बराबर हो रहा है। यही हालत इस गर्भपात को वैध बनाने वाले बिल की भी होगी, भ्रष्टाचार, अनाचार की अभिवृद्धि होगी, और परिणाम होगा शून्य।

जनसंख्या की वृद्धि न हो, अनाचार नहीं बढ़े-इसका एक मात्र उपाय है प्राथमिक शिक्षा से लेकर स्नातक प्रशिक्षण या चरम शिक्षातक योग्यता के अनुसार अच्छे विद्वानों से पुस्तक लिखवाकर उन्हें अनिवार्य रूप से पाठ्यपुस्तकों में रखा जावे। मेले, पर्वों और उत्सवों के समारोहों में प्रभावकारी भाषण दिलाया जाय और जनता के मस्तिष्क को धर्मोन्मुख बनाकर ब्रह्मचर्य के महत्व को उनके विशेष कर नवयस्कों एवं सुकुमार मति बालकों के—गले के नीचे उतारा जाय। जिससे वे ब्रह्मचर्य पालन की ओर झुकें, धर्म एवं ईश्वर से डरें और व्यभिचारादि कुत्सित कर्मों से बचकर अपना एवं देश का कल्याण करते रहें।

—विद्वान् लेखक ने इस लेख में अनाचार-व्यभिचार आदि कुत्सित कर्मों को रोकने का बहुत सुन्दर उपाय सदाचार और ब्रह्मचर्य की शिक्षा का प्रचार बतलाया है—जो सर्वोपयोगी है।



गीत

मोरे घर न बरस कारे-कारे बदरा
उठै जियरा तरस कजरारे बदरा

टुपुर-टुपुर बरबस महुआ अस बैरिन बुन्नी चूवै
जइसे केहू अन्हेरै लगै परनवाँ छूवै
मोरा हिया न परस जारे–जारे बदरा
मोरे घर न बरबस कारे-कारे बदरा

अइसन ई परदेसी पंछी कहना एक न मानै
बरजि-बरजि के हारी तनिको निबुसै नाहीं जानै
मोरा भीजै सरबस मतवारे बदरा
उठै जियरा तरस कजरारे बदरा

डोली चढ़ल बहुरिया आवै पीर न मन कै आँकै
कइसन एकर बान कि दियना बारि-बारि के झाँकै
लागै केतनी सरस उजियारे बदरा
उठै जियरा तरस कजरारे बदरा

टटका मन कै बासी सपना केहू ना पुछवइया
रात-रात भर अलख जगा के जोगिन भइल ओंहइया
हेरै सँझिया कै रस भिनुसारे बदरा
मोरा हिया न परस जारे-जारे बदरा

—हरिराम द्विवेदी

स्वाधीनता संग्राम के साहसी सेनानी

स्वर्गीय श्री सन्तशरण मेहरोत्रा जी

विश्वनाथ शर्मा की श्रद्धांजलि

अपने प्रायः पचास वर्षों के अभिन्न मित्र और सहयोगी को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कितनी ही सुखद घटनाएं स्मृति-पटल पर उभड़कर आ रही हैं जो एक पुस्तक का विषय है। कठिन से कठिन परिस्थितियों का हंसते हुए, परन्तु साहस के साथ सामना करना उनकी विशिष्टिता रही है जो विरले ही सजन को प्राप्त होता है। वे सच्चे अर्थों में प्रजात शत्रु थे।

महात्मा गांधी के चलाए हुए सन् १९२१ के असहयोग आंदोलन में वे सम्मिलित हुए। तब से बराबर कांग्रेस के संघटन सम्बन्धी कार्यों और विशेषकर क्रांतिकारी कार्यों में वे बराबर तन-मन-धन से लगे रहे। बनारस में कोई कांग्रेस प्रदर्शनी नहीं हुई जिसके सुव्यवस्थित संचालन में उनका हाथ न रहा हो। राष्ट्रीय विश्वविद्यालय काशी विद्यापीठ के वे कोषाध्यक्ष और निरीक्षक सभा के सदस्य रहे। उसके सफल संचालन में उनकी कुशलता और सूझ-बूझ का निकट से परिचय मिला।

सन् १९३०, ३२, १९४१ तथा १९४२ के राष्ट्रीय स्वाधीनता प्राप्ति के संग्राम में उनके साहस, क्रांतिकारी विचारों और उसको पूरा करने की लगन का पता उनके 'रण मेरी', 'शंखनाद', 'प्रान्तीय कांग्रेस' बुलेटिन आदि गुप्त समाचार-पत्रों के प्रकाशन और वितरण की व्यवस्था के सम्बन्ध में मिला जो तत्कालीन ब्रिटिश सरकार के विरोध में सरकारी अधिकारियों और पुलिस को चुनौती देकर प्रकाशित होते थे।

उनकी न्यायप्रियता का प्रमाण उस समय मिला जब वे सात वर्षों तक गवर्नमेंट के निमन्त्रण पर आनरेरी स्पेशल मजिस्ट्रेट का कार्य करते रहे। वे ३० वर्षों पहिले भी अदालत का काम हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि द्वारा करते थे। उनके लिखे फैसलों की प्रशसा तत्कालीन ब्रिटिश अधिकारी भी करते थे।

सन् १९४१ के व्यक्तिगत सत्याग्रह तथा सन् १९४२ के अंग्रेजों भारत छोड़ो आन्दोलन के दिनों में ब्रिटिश शासकों ने भारत रक्षा कानून के अनुसार उन्हें वर्षों तक नजर बन्द रखा। आगरा तथा बनारस की जेलों में नजर बन्दी के समय दिन-रात उनके साथ रहकर देखा कि कितनी शान के साथ जेल की कठिनाइयां बरदाश्त करते थे। जो भी सामग्री भोजन के लिए मिलती उसको बड़ी ही खूबी के साथ नाना प्रकार के व्यंजन प्रस्तुत कर देते थे और सबको बड़े प्रेम से खिलाते थे। कभी झुंझलाते नहीं थे। गुस्सा होते तो उन्हें शायद

ही किसी ने देखा हो ।

बनारस की जेल में डाक्टर सम्पूर्णानंद श्री श्रीप्रकाश जी, पंडित यज्ञनारायण उपाध्याय, आचार्य बीरबल सिंह, आचार्य राजाराम शास्त्री आदि विद्वानों के सम्पर्क में आने पर उन्होंने ज्योतिष, राजशास्त्र आदि का अध्ययन किया। आगरे की जेल में आचार्य नरेन्द्र देव आदि विद्वानों से भी अध्ययन किया। इसप्रकार उनको विभिन्न विषयों का ज्ञान था।

खादी तथा ग्राम उद्योग कमीशन की ओर से बम्बई, बिहार, उत्तर प्रदेश आदि में संघटन करके इन्होंने अपने व्यावसायिक तथा व्यावहारिक ज्ञान का परिचय दिया जो इन्हें परम्परागत रूप से बनारसी साड़ी के विशिष्ट व्यापारी के रूप में मिला था। इस समय भी वे वाराणसी में दिया सलाई का कुटीर उद्योग चलाने की तैयारियां कर चुके थे कि वे हमलोगों को छोड़कर चले गये।

इससे उनके परिवार के साथ-साथ असंख्य मित्रों की अपूरणीय क्षति हुई है। काशी नगरी का एक सच्चा सेवक उठ गया जो जहां भी गया काशी के गौरव की रक्षा करता रहा।

मेरे लिये वे एक भाई के समान थे। सुख में दुख में सदा स्नेह के साथ सद व्यवस्था करते थे। सन् १९४२ की नजर बन्दी के समय जब मैं बनारस की जिला जेल में मरणासन्न हो गया था दिन-रात जागकर बड़ी लगन से सेवा करके मुझे बचाया। मेरे पूरे परिवार का एक स्नेही हित चिंतक चला गया। अब उनके बच्चों, बाबा, सपना हो गये। मैं उनके पुत्र श्री गुलजारी मल मेहरोत्रा, स्नेहमयी धर्म पत्नी पुत्रियों, पौत्रों और दौहित्रों तथा स्नेही मित्रों के साथ हार्दिक समवेदना प्रकट करता हूं। तथा सच्चे अर्थों मे सन्त-शरण जी की गतात्मा को शांति के लिए प्रार्थना करता हूं।

हमलोगों का कर्तव्य है कि उनके अधूरे काम को पूरा करें और साहस के साथ भारत की स्वाधीनता की रक्षा के लिए सदा तत्पर रहें। जिसके लाने में संत शरण जी ने अपना सब कुछ होम-हवन किया।

काशी विद्यापीठ भवन, विश्वनाथ शर्मा
वाराणसी

मौनी अमावस्या संवत् २०२८

स्वर्गीय श्री सन्तशरण मेहरोत्रा परिचय एवं श्रद्धांजलि

ले० बनारसी लाल 'आर्य'

"जीवन के साढ़े चार दशकों का साथ छोड़कर चले गये भैया बब्बा मल जी ऐसी भी क्या बात आ पड़ी थी"। बस इतना ही मुह से निकला और कण्ठ रुद्ध हो गया। पुस्तकालय बन्द करके मैं अन्तिम दर्शन के लिये चल पड़ा अनजाने ही पैर अपने गंतव्य की ओर बढ़ रहे थे किन्तु मन .... ।

सन् १९३२ में संस्था के कतिपय कमेटी के सदस्यों ने कुछ गलत तत्वों का सहारा लेकर स्वार्थ वश इसके जड़ पर कुठाराघात करना चाहा। ऐसी भी परिस्थिति में विधाताने श्री संत शरण मेहरोत्रा : बब्बीमल जी: से मेरा परिचय कराया था, ... । आज वह दृष्य सरकार हो उठा है, काश : तुमने मुझे आश्वासन भर दे कर टाल दिया होता तो शायद आज यह पीड़ा .... । किन्तु न जाने क्यों तुमने मुझे केवल बचन ही नहीं, तन, मन और कर्म से सहयोग देकर इस संस्था को सींच जिलाया और मृत्यु पर्यन्त तुम इस महा यज्ञ के प्रमुख यजमान बने रहे।

शुभ्र खादी धारी, विनम्र, मन्द हास्य और सुख मण्डल, मझोला कद, भारतीय संस्कृति के उपासक, पं० नेहरू की प्रति मूर्ति के रूप में विख्यात, स्वतंत्रता संग्राम के कर्मठ सेनानी, समाज हित चिन्तक, प्रेमी तथा मेरे परम हितैषी का यह पर्थिव शरीर मेरे सम्मुख है। सहस्त्रों अश्रु पूरित नेत्र तक अजाब गहनता व्यप्त वातावरण मेरी चेतना को धीरे—धीरे जड़ बनाता जा रहा है। मस्तिष्क में कई चित्र उभरते हैं किन्तु कर्तव्य जिसका निष्ठा के साथ पालन करने की प्रेरणा इस महान कर्म योगी ने मुझे दिया है। उसी के सम्मुख ...... नहीं ... नहीं। आंसू पी जाता हूं। मैं क्यों उन खट्टी मीठी स्मृतियों को सजोउं .... अभी तो कुछ और करना है।

धू... धू करके चिता जल उठी, पार्थिव शरीर पंच तत्व में विलीन हो रहा है, किन्तु ...... नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः नैनं क्लेदन्त्यापो नैन शोसयति मारुतः। आत्मा तो अजर अमर है तुम्हारा यशः कार्य अमर रहेगा।

जीवन परिचय

सन् १८६० में अमृतसर से एक कुलीन खत्री परिवार काशी में आकर बस गया। परिवार के प्रमुख श्री छुन्नमल जी के सुपुत्र बाबू धुमिमल जी ने बनारसी वस्त्र के व्यवसाय से जीवन प्रारम्भ किया। और लक्ष्मी की महती कृपा के फलस्वरूप यह परिवार

शीघ्र ही काशी के ख्याति प्राप्त व्यवसायी परिवार की श्रेणी में आ खड़ा हुआ।

इसी परिवार में सन् १९०१ में स्वर्गीय श्री सन्त शरण मेहरोत्रा का जन्म हुआ। इनके पिता श्री गिरधर दास जी थे। लक्ष्मी की महती कृपा के फलस्वरूप मेहरोत्रा जी के अग्रज केवल एक अच्छे व्यवसायी ही नहीं बने अपितु मुक्त हस्त से दान दे तथा पंच क्रोषी के भीसचण्डी तथा विन्ध्याचल आदि में धर्मशालाएं एवं पाठशालाओं की स्थापना करवा कर यश एवं पुण्य भी लूटा तथा एक जमीदारी भी खरीद ली। सर्वत्र सुख एवं समृद्धि का साम्राज्य था।

श्री सन्त शरण जी ने बी. ए. एल. एल. बी. की पढ़ाई समाप्त की और पिता की आज्ञा से अपनी जमीदारी का कार्य देखने लगे। अब उन्हें अधिक समय तरना ग्राम में ही बिताना पड़ता था। किन्तु हृदय और कुछ करने को व्याकुल था। अंग्रेज महाप्रभुओं ने इन्हें प्रथम श्रेणी का आनरेरी मजिस्ट्रेट जैसा पद देकर बाधना चाहा, किन्तु वहां भी उन्होंने सदैव जनसेवा को ही महत्व दिया। गरीब एक्के एवं तांगें वालों पर लगे हुए अर्थदण्ड को अपने जेब से भर देना इनके लिए अत्यन्त सहज कार्य था।

सन १९४०-४१ में देश में गांधी की आंधी आयी। सम्पूर्ण देश में एक नूतन उत्साह का संचार हुआ। मेहरोत्रा जी देश के इस पुनीत यज्ञ में आहुति देने से कैसे बचे रहते। फिर क्या था सम्पूर्ण धन एवं पद को तिलांजली दे वे सत्याग्रह आन्दोलन में एक ज्वाज्वल्य मान नक्षत्र की तरह उदित हुए। और अंग्रेजी दमन के परिणाम स्वरूप जेल में ठूस दिये गये। सन १९४२ के स्वतन्त्रता संग्राम में बाबू दुर्गा प्रसाद खत्री श्री पराड़कर जी एवं बसूबाबू तथा विश्वनाथ शर्मा आदि के सहयोग से निकलने वाली 'रण भेरी' नामक पत्रिका सम्पूर्ण व्यवस्था एवं मुद्रण यन्त्र की रक्षा का पूरा भार श्री मेहरोत्रा जी पर ही था। अंग्रेजो के बड़े-बड़े धुरंधर प्रशिक्षित जासूस मेहरोत्रा जी के सामने मात खा गये। कभी साधू और कभी किसी अन्य वेश में ये सरेआम अपनी कार गुजारी दिखा जाते। और लोग अवाक मुह ताकते रह जाते। उस समय ये पुलिस एवं अंग्रेजी सत्ता के सिर दर्द बने हुये थे। सूझ बल और चातुर्य के सहारे 'रणभेरी' अपने समय पर प्रकाशित एव प्रसारित होती रही। अन्ततोगत्वा केवल सन्देह के आधार पर ये लोग पकड़ गये। मेहरोत्रा जी को चेतगंज और दुर्गा प्रसाद खत्री को भेलूपुर थाने ले जाया गया। बड़ी-बड़ी यातनाएं दी गई, किन्तु क्या मजाल कि कोई बात फूटे। अन्त में इन्हें बनारस सेन्ट्रल जेल ले जाया गया जहां मेहरोत्रा जी ने अपने जीवन के चार अमूल्य वर्ष गुजारे।

सन १९४ से ४२ तक मेरा जेल में भी मेहरोत्रा जी का साथ रहा अन्तर। बस इतना ही था कि उन्हें बी क्लास मिला था और मुझे सी क्लास। जेल मे भी उनका मुझ पर विशेष ममत्व था, और यही गांठ थी जो आज भी उन्हें और मुझे जोड़े हुए है। किन्तु हाय...... आज..... ।

जेल से छूटने पर इस देश सेवी के लिये विस्तृत एवं प्रशस्त मार्ग था जिस पर चल कर आज वह उचे से ऊचे पदों पर आसीन हो सकता था। चुनाव की राजनीति तथा आत्म प्रचार के बल पर वह देश में अपने आप महान बन सकता था पर कर्म योगी कुर्सी क लोलुप कब हुये हैं। झूठे विज्ञापन बाजी से दूर रह कर श्री मेहरोत्रा जी ने केवल कार्य किया। वे न केवल अभिमन्यु पुस्तकालय के संरक्षक समिति के स्थायी सदस्य ही थे अपितु १९५९ में काशी विद्यापीठ के कोषाध्यक्ष सारस्वत खत्री विद्यालय के मन्त्री, सनातन धर्म इण्टर कालेज के व्यवस्थापक आदि पदों को बहुत दिनों तक सुशोभित किया। इन जनसेवी ने काशी की न जाने कितनी सामाजिक एवं साहित्य सस्थाओं को पनपने में अपना अमूल्य योगदान दिया है। तथा पद और प्रशंसा के लोभ से दूर रहकर जीवन पर्यन्त उनका निवहण किया यह वस्तुत: किसी के लिए बताना सम्भव नहीं है।

आप आचार्य नरेन्द्र देव के समाजवादी विचार धारा से प्रभावित होने के कारण सन १९४८ में नासिक में हुये निर्णय के अनुसार कांग्रेस त्याग कर समाजवादी पार्टी में रहकर वाराणसी में हुये समाजवादी सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष प्रतिष्ठित पद को सुशोभित किया और कई वर्षों तक उसके प्रचार एवं प्रसार में अपना बहुमूल्य योगदान किया। इधर तीन वर्षों से वे काशी में ही स्थायी रूप से रहने लगे थे आज मेहरौत्रा जी नहीं रहे वे अपने पीछे अपनी पत्नी श्री गुलजारी लाल जैसा पुत्र दो पुत्रियां और पौत्र-पौत्रियों का भरा पूरा परिवार छोड़कर गये हैं। साथ ही न जाने कितनी सस्थाओं को अपने बहुमूल्य योग से वंचित कर गये। श्री मेहरौत्रा जी के जीवन में ऐसे भी अवसर आये जब अपनी शालीनता एवं परोपकार के सद्गुण के कारण उन्हें नीलकण्ड भी बनना पड़ा।

यह अभिमन्यु पुस्तकालय परिवार उनके असामयिक निधन से शोक सन्तप्त है क्योंकि आज संस्था का एक स्तम्भ अनजाने ही टूट गया। शोकाकुल सस्था के सदस्य तथा मैं उन्हें अपनी भावभीनी श्रद्धांजली अर्पित करते हुये भूत भावन भगवान भूतनाथ से प्रार्थना करता हूं कि उन्हें शिवलोक प्रदान कर उनकी आत्मा को शान्ति दे तथा उनके परिवार के सदस्यों एवं हमें वह बल प्रदान करे जिससे उनके द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर हम निष्ठा पूर्वक चल कर उनके सपनों को साकार कर सके।

अन्त में मैं संस्था के पदाधिकारियों से आग्रह करूंगा कि वे कुछ ऐसा कार्य करे जिससे इस संस्था में कोई न कोई ऐसा कार्य हो जो भविष्य में मेहरोत्रा जी स्मारक के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त करें।

—*—

'काहे री नलिनी तूँ कुम्हिलानी'

रामअकबाल पाराडेय

नलिनी का जन्म जल में होता है। जल में रहती है और जल में ही कुम्हिला जाती है। उसका अन्तस्तल सदैव शीतल रहता है। सतह शीतल मन्द झकोरों से चचल रहती है, फिर भी उसकी पंखुड़ियों में उदासी !! सोचता हूं, नीलनी क्यों कुम्हिलाती है। कहते हैं, कबीर का यह पद अन्योक्ति परक है। उन्होंने आत्म तत्व के लिए नलिनी शब्द का प्रयोग किया है और परमात्म तत्व के लिए जल का। जल चारो ओर है, परमात्मा सर्व व्याप्त है। हममें तुममें खड्ग खम्भ में—घट-घट व्यापी राम। क्या सचमुच राम घट घटवासी हैं ? क्या एक ही राम सब में रम रहा है? विश्वास नहीं होता, यदि एक ही राम सभी में हैं तो सबकी अनुभूति अपनी क्यों नहीं बन जाती ? होती भी सुनी गयी है। सुनता हूं कभी दक्षिण के सन्त ज्ञानदेव के सामने पाखण्डियों ने उनकी समानुभूति की परीक्षा के लिए एक भैंसे पर कोड़े लगाये। वे कराह उठे। जब उनकी पीठ देखी गयी तब काली साटें पड़ी हुयी थीं।

सदयता की यह सीमा किसके द्वारा अतिक्रमित होती है ? एक प्रश्न मेरे मन में बार-बार उठता है। तुलसी का मानस कहता है—मुकुर मलिन अरुनयन विहाना। राम.रूप देखहि किम दीना ॥ यदि केवल मुकुर मलीन होता है तब भी अपना स्वरूप देखने के लिए आड़े तिरछे अनेकों प्रयत्न करना पड़ता है, परन्तु जब नेत्रहीन होकर मलिन मुकुर में या स्वच्छ मुकुर में ही कोई दर्शन करना चाहे तो कैसे दर्शन करेगा ? राम रम रहा है इसका ज्ञान होगा ही नहीं। तो क्या मेरा मुकुर मलिन है ? मलिन तो अवश्य है और नेत्र भी प्रकाश-हीन हैं, अवश्य ही नहीं कहा जा सकता। क्योंकि और कुछ देख सकूं या नहीं, परन्तु दूसरों की गन्दगी तो खूब देखता हूं और हृदय भी इतना स्वच्छ तो अवश्य है कि दूसरों की बुराई का, ईर्ष्या और द्वेष का चित्र प्रत्येक क्षण देता रहता है। फिर भी सन्त ने ऐसा क्यों कहा ! यदि तुलसी मिलते तो एकाध झड़प हो जाती, किन्तु अब कुछ-कुछ सोचने लगा हूं। वह गलत नहीं हो सकते। कमी अपने में ही कहीं है। यदि वे पंक्तियां त्रुटिपूर्ण होती तो मुझसे पूर्व अधिक स्वाभिमानी व्यक्ति हो चुके हैं, उनकी दृष्टि तथा वाणी में इतनी शक्ति थी जो उन शब्दों की मात्रा तक का भी पता नहीं चलने देतीं। परन्तु देखता यह हूं कि वे पंक्तियां अपना आदरार्थक स्थान अनायास प्राप्त करती जा रही हैं। पहले तो उनकी पूछ गांवों की झोपड़ियों में ही होती थी। अब तो विश्वविद्यालयों में अध्ययन अध्यापन का विषय बन गई

हैं। शोध छात्रों के चिन्तन की समस्या बन गयी हैं। मानस के इस प्रचार का परिणाम ? झोपड़ी का किसान तो राम को अपना आदर्श मानता है। उसकी जबान पर सदा तुलसी का मानस अपनी मानसी अनुभूतियों की सहजना उच्चारित करता है। बात की बात में उनकी आंखें अश्रुपूरित हो जाती हैं। वे मानस से सीखते हैं, मानसकार से समझते हैं। अपनी भावनाओं का पावन आधार राम को मानते हैं। जुताई,बुवाई, भलाई,बुराई, ऊंच,नीच, निज पर सभी संबंधों के संचालन में वे 'कोशलपुर राजा' को हृदय में धारण करते हैं। वे मानस से इतना प्रभावित हैं कि कैकेई कंकहूं या कंकही और कौशल्या कोसिला तथा सुमित्रा सुमिन्त्रा बनकर जीवित हैं। सीता तो उनके चारित्र्य बल को मापदण्ड ही हैं। राम, लक्ष्मण की अन्तरंग लोक-जीवन में इतनी सहज हो गई है कि सौभाग्यवती माँ निरोध युग में भी राम के बाद लक्ष्मण की कामना करती हैं और दूसरी ओर विश्व-विद्यालयों के शिक्षकों और शिक्षितों में मानस ने अभी तक क्या किया है ? क्या उनके हृदय में स्नेह, बुद्धि में सहजता, विचारों में शुचिता, कर्मों में शुद्धता तथा व्यवहार में व्यापकता का प्रभाव दिखाई पड़ता है ? यदि नहीं कह दूं तो आप मेरा मुंह नोचने लगें और यदि हाँ कर दूं तो संपूर्ण दार्शनिक मान्यताएँ मिथ्या प्रतीत होंगी।

पढ़ा भी है और सुना भी है, शीशा का सम्पर्क मरकत से होने पर मरकतवत् हो जाता है। गंधी के पास रहने पर बिना मूल्य चुकाये वस्त्र सुगन्धित हो जाता है। मन आनन्दित होता रहता है। प्रेम सूत्र-कार ने तो यहां तक कहा है कि उसका चिन्तक उसी प्रकार का हो जाता है। सूक्ष्म ही नहीं स्थूल भी बदलता है। तो मानस ने शिक्षितों को कितना बदला है। अनुराग शून्य जीवन में केवल पटराग का ही स्वर गूंज रहा है। स्नेह के नाम पर विरोध का बीजवपन हो रहा है।

हमारे जीवन के सम्पूर्ण सम्बन्ध अर्थ-हीन शब्दों में बंधे हैं। अंग्रेजी प्रूफ जैसा इनका आकर्षण है। शब्दों की व्याप्ति-शक्ति आत्मा की सूक्ष्म तरंगों को आत्मसात करके ही स्थिरता प्राप्त करती है। इससे व्याप्ति में व्यक्ति की निजता कहीं भी अवरोधक नहीं बनती। अवरोध व्यक्ति की आत्मा का गुण नहीं। व्याप्ति आत्मा की आनन्दमयी अनन्त रागिनी है। जब यह रागिनी बजती है तो वह फूलों के संग हंसने लगता है। लताओं से खेलता है। जल की चंचल तरंगों के साथ उछलने लगता है। पपीहे के साथ रोने लगता है तो मयूरों के साथ नाचने लगता है। पर्वतों को देखकर गर्वोन्नत हो जाता है और अनन्त सिन्धु को स्मरण कर गंभीर। उसकी झंकार जब झंकृत होती है तो शरीर पुलकित हो जाता है। नेत्र प्रेमाश्रु पूरित। वह दालतों को देखकर उदार बन जाता है तो दमनकारियों को देखकर उग्र। कभी वह झूम-झूम कर गाने लगता है—

दर-दीवार दरपन भये, जित देखूं तित तोहि
कर-पाथर सीकरी, भये आरसी मोहिं ॥

नलिनी इसीलिये कुम्हिलाती है कि वह जल में रह कर भी जलतत्व का स्वभाव नहीं जानती। व्यक्ति इसीलिए साधन सम्पन्न होकर भी दुखी बना है कि वह साधन का अर्थ नहीं समझ पाता। उसने अर्थ समझने का प्रयत्न तो भरपूर किया है किन्तु सम्बन्धहीन अर्थ कब तक उसे सांत्वना प्रदान करेंगे।

शब्द का विस्तार ब्रह्माण्ड व्यापी है। भारत की झोपड़ी का किसान सोवियत के चान्द्रयात्रियों की मृत्यु पर सहानुभूति व्यक्त करता है। अमेरिका का प्रेसिडेण्ट विश्व के विपन्न राष्ट्रों को सहायता प्रदान करता है। पड़ोसी राष्ट्रों के दुख पर आठ-आठ पांती आंसू बहाता है, किन्तु प्रत्यक्ष दर्शियों का यह भी कहना है कि बाजार का भाव ऊंचा करने के लिये अन्न को जल समाधि दी जाती है। मृतात्मा राष्ट्र अन्ततोगत्वा क्या है? कहा नहीं जा सकता।

कबीर की नलिनी तो कुम्हिलायी ही हैं। हमारी तो सूख गई है। तभी मैं कभी उसकी बात भी नहीं करता। यह सब तो उनके उस पद को देखकर भावावश में कह गया। आखिर दुनियाँ में सबको अपना बनाकर होगा क्या? सोम से शनि तक बच्चों के साथ माथापच्ची करने के बाद यदि रविवार की शाम को सिनेमा जाते समय किसी भिखमंगे को पैसा न दूं तो किसीको कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। वह इतना निर्लज्ज है कि बार-बार अपनी पुरानी गूदड़ी पर बैठा झड़ी अंगुलियों वाला हाथ उठाकर मुझे दुआएं देता है और न जाने क्या-क्या कहता है। केवल इसलिए कि उसे दो पैसा मिल जांय। वह ही जान तक कि उसके सड़े हाथों को देख कर मुझे घृणा होती है। जमाना बहुत स्वार्थी है। उसे इतना तो जानना ही चाहिए कि आदमी जब छः दिन की थका चक्की में पीसकर शर एकदम धूल बन जाता है तब कहीं रविवार आता है और बहुत मुश्किल के बाद रविवार की शाम। फिर उन भलेमानसों को हाथ हिला-हिलाकर दुआएं देने की आवश्यकता क्या है। मुझसे उन्हें मांगने का क्या अधिकार है। मैं देश का राजा तो हूँ नहीं, कि मेरी आगवानी करके कुछ इनाम बख्शीश लेना चाहते हैं। सड़क-सवारी चलने के लिये है, सवारी चाहे राजा की हो चाहे रंक की, वह चलेगी, वह बसने के लिये नहीं। ये इतने स्वार्थी हैं कि बिना मेहनत कमा-खाने के ध्येय से सड़कों पर पड़े रहते हैं। सचमुच संसार में सबसे अधिक इन्हीं की आत्मा मरी है। इनमें तो चेतना का सचार हो ही नहीं सकता। उन्हें मांगना भी हो तो ऐसे व्यक्ति से मांगें जो दाता हैं। कम से कम उन्हें जिन्दगी के अनुभव से लाभ तो उठाना चाहिये।

सोचता हूँ कबीर का पद इन स्वार्थियों को याद करा देना चाहिये। कम से कम दूसरों की रुचि तथा सुख का ध्यान रखकर अपना लूला हाथ उठाना सीखें। जैसे उन्हें अपनी रोटियों की चिंता है उसी प्रकार दूसरों की रुचि का ध्यान रखना सीखें। आत्मवत् सर्वभूतेषु जब व्यवहार करेंगे तब न चाहकर भी कुछ लोग कुछ न कुछ तो अवश्य दे देंगे। जब कभी सड़क पर चलता हूँ तो कबीर का पद अनायास ही स्मरण हो आता है। मेरी नलिनी इन बदसूरतों की स्थिति का स्मरण करके ही कुम्हला जाती है और भ्रमण का सम्पूर्ण आनन्द किरकिरा हो जाता है।

साहित्य और ललित कलाओं का समीक्षात्मक अध्ययन

लेखक—श्री कृष्णमोहन ठाकुर एम० ए० आचार्य
प्रधानाचार्य, रणवीर संस्कृत विद्यालय (अ० का० हि० वि०)

'साहित्य संगीत कला विहीन:
साक्षात् पशु: पुच्छ विषाणहीन:'

आनन्द के अनुभव के लिए विश्वकर्ता ने सृष्टि की रचना की। वह स्वयं रस से तृप्त है, कहीं से किसी प्रकार रस से न्यून नहीं है। जैसा कि अथर्ववेद १०-८-४४ में कहा है कि-'रसेन तृप्त: न कु अनो न:'। उपनिषद में भी ऐसा ही कहा गया है—

'रसो वै स: रसं ह्य वायं
लब्ध्वाऽनन्दीभवति।'

जहाँ रस नहीं वहाँ प्राण भी नहीं रहता। एक अखण्ड-रस सृष्टि में ओत-प्रोत है। उसके मधुर सरोवर शत-सहस्र संख्या में चारों ओर भरे हुए हैं। रस के अनुभव के अनेक स्रोत हैं। रूप की शोभा, चरित्र, ज्ञान आदि रस ग्रहण के अनेक मार्ग हैं। साहित्य, संगीत, और कला रसानुभव के एक अत्यन्त प्रिय द्वार हैं।

कला, श्री वा सौन्दर्य को प्रत्यक्ष करने का साधन है। प्रत्येक कलात्मक रचना में सौन्दर्य वा श्री का निवास रहता है। जिस सृष्टि में 'श्री' नहीं है, वह रस हीन होती है। रसानुभव के लिए प्राण सदा उत्सुक रहता है। जहाँ रस नहीं वहाँ प्राण भी नहीं रहता। जिस जगह रस, प्राण, और श्री तीनों एकत्र होते हैं, वहाँ कला रहती है। प्राण को रस अत्यन्त प्रिय है, रस का अविच्छिन्न प्रवाह जब प्रगट होता है, तब प्राण तृप्त होता है। जिस युग को कला की क्षीरधात्री प्राप्त होती है, वह युग रस से धन्य हो जाता है। कला के अङ्क में पोषित समाज को सृष्टि सम्बन्धी श्री, प्राण और रस का अपूर्व अनुभव प्राप्त होता है।

कल्पना लोक में नये-नये भावों की सृष्टि करना राष्ट्रीय चिन्तन का उत्थान पक्ष है। पुराणों की बहुमुखी गाथाओं के भव्य प्रसाद इसके लिए खड़े किये गये है। साहित्य एवं संगीतकारों ने आदर्श और चरित्र के रूपक बाँधे और इनके साथ इतिहास ने अपनी मैत्री स्थापना की। कल्पनालोक ने साहित्य, पुराण एवं इतिहास का सत्यरूप जब रहता है तभी तीनों का वरदान पाकर कला समाज के जीवन को मूर्त रूपों से भर देती है।

अमूर्त भाव, किस प्रकार सफलता से व्यक्त किये जा सकते हैं, इसके लिए शिल्पी को दीर्घकाल तक जूझना पड़ता है, तब कहीं जाकर कला की परिभाषाओं के वे सूत्र उसके हाथ आते हैं, जिनके द्वारा कलाकार की भाषा राष्ट्र के गूढ़ चिन्तन को व्यक्त करने के योग्य बनती है। शिल्प की भाषा बड़ी अर्थवती होती है। कला की लिपि का आविष्कार कलाविदों की

उत्कृष्ट साधना का परिणाम होता है।

शिल्पकला का चित्रकला से वैसा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है, जैसे मनुष्य शरीर से उसकी आत्मा का। यदि शिल्पकला शरीर है, तो चित्रकला उसकी आत्मा है। जिस प्रकार आत्मशून्य शरीर नहीं रह सकता है, उसी प्रकार चित्रकारी बिना शिल्पकला निरर्थक है, और बिना शिल्पकला के चित्रकला भी व्यर्थ है। इन दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध वैसा ही कहा जा सकता है, जैसा किसी सुन्दर स्त्री का उसके शृंगार से। शिल्पकला सुन्दर स्त्री के समान है और चित्रकला उसके आभूषण के। सुन्दर आभूषण से सुन्दरियों का सौंदर्य जैसे कई गुणा बढ़ जाता है, उसी प्रकार किसी बनी हुई वस्तु को जब चित्रों से सजा दिया जाता है, तब उसके प्रति आकर्षण अधिक बढ़ जाता है। शिल्प के प्रत्येक रसिकों एवं कलाविदों के लिए रस के अनुपम स्रोत बन जाते हैं, जो रसज्ञ हैं, सहृदय हैं उनके हृदय में ही कला रस सञ्चार का द्वार खोलती है और वे ही कला की वाणी के अर्थ को प्राप्त करती हैं। कला के आचार्य उसके बाह्य रूप को समझ सकते हैं, पर रसज्ञ के लिए कला की वाणी अपने अन्तरङ्ग रूप को प्रगट करती है।

शिल्पकलाओं से अतरिक्त साहित्य और संगीत कलाओं से भी चित्रकला का सम्बन्ध है। उनका आकार भी चित्रकला पर निर्भर है। कला में लालित्यगुण की प्रधानता होने से हम ललित विशेषण जोड़ देते हैं। इस प्रकार ललितकला हमारी कोमल अनुभूतियों की प्रतीक बन जाती है। विद्वानों ने इनका विश्लेषण निम्नलिखित रूप से पांच भागों में विभक्त क्या है—'काव्य, संगीत, (गीत, वाद्य, नृत्य) चित्र मूर्ति। ये पांच कलाए मानव कल्याण की पांच प्रगतियों के नाम हैं। वेद से लेकर अब तक के सभी काव्य, भावना प्रधान ही होते आये हैं, और जहां भावना की प्रधानता है वहाँ संगीत पहले से ही विद्यमान रहता है। कविता का स्फुरण तभी होता है, जब तपःपूत हृदय मे भाव पूर्ण रूप से भरकर बाहर उछलने लगते हैं। संगीत के रूप में जो भाषा या शब्द, अनायास बाहर निकलते हैं वही काव्य बन जाते हैं। एक अंग्रेज विद्वान ने कहा है—Poetry is music in words and music in Poetry in Sound. अर्थात् कविता शब्दों के रूप में संगीत और सगीत स्वरूप में कविता है।

नृत्य को सजीविता देकर गति उत्पन्न करने में गीत का हाथ है। माया के रूप में नट की आत्मा को आन्दोलित करना गीत का काम है। इससे एक चेतना सी जागृत होती है नट के रूप में, मानव के भौतिक शरीर में। गान की सहायता करता हुआ वाद्य, नृत्य का सहायक होता है। लय की लहरी अपना एक स्वतन्त्र वायु मण्डल बना लेती है, जिससे नृत्य भाषा या भाव के लय मण्डल में जगमगाते हुए परमानन्द की सृष्टि करते हैं। स्वर में अलौकिक शक्ति है, वह नर के अन्दर चेतना उत्पन्न करता है, स्वर एवं

लय की सहायता के बिना नर तक में भावना का उदय नहीं हो सकता। स्वर लय ही उसे हँसने रोने को प्रेरित करता है। नृत्य और चित्र का घनिष्ठ सम्बन्ध मार्कण्डेय पुराण से ज्ञात होता है। वहाँ मार्कण्डेय मुनि ने कहा है कि नृत्य और चित्र दोनों में ही त्रैलोक्य की अनुकृति होती है। नृत्य में दृष्टि, हाव, भाव आदि का जो भंगी बनाई गई है, वह चित्र में भी प्रयोज्य है। क्योंकि वस्तुतः नृत्य ही परम चित्र है। (नृत्यं चित्रं परं स्मृतम्। विष्णुधर्मोत्तर के चित्र-सूत्र के आचार्य चाहते हैं कि जो चित्रकार सोये हुए मनुष्य में चेतना दिखा सके या मरे हुए में चेतना का आभास दिखा सके वह चित्रकार है। यहाँ तक की जो तरंग कि चञ्चलता अग्नि शिखा की कम्प्रगति, धूम का तरङ्गित होना और पताका का लहराना स्पष्ट दिखा सके, वास्तविक में वही चित्र का कुशल ज्ञाता है।

'सुप्तञ्च चेतनायुक्तं मृतं चैतन्यवर्जितम्।
निम्नोन्नत त्रिभागं च यःकरोति सः चित्रवित्॥
तरङ्गाग्निशिखाधूम-वैजयन्त्यम्बरादिकम्।
वायुगत्या लिखेद् यस्तु विज्ञेयःसतुचित्रवित्॥

भारतीय कला भारतीय संस्कृति का एक सुन्दर सन्देश वाहक बनकर अपने भव्य रूप की सम्पत्ति से सम्पन्न है। आध्यात्मिकता की छाप उसके ऊपर इतनी है कि उपयोगी कलाएँ भी इस रूप से विहीन नहीं हो सकी हैं। कला मनोहर होते हुए भी जगत् की मंगल साधिका है। सच्ची कला वही है जो प्राणियों के हृदय को आकर्षण करने की क्षमता रखती है तथा साथ ही साथ उनका परम शाश्वत मंगल साधन करती है। इस कला के ऊपर वैष्णव और शैव धर्म का प्रभाव प्रचुर मात्रा में पड़ा है। यह तो निर्विवाद तथ्य है कि भारत के नाना धर्मों के भीतर वैष्णव एवं शैव धर्म की कलात्मक अभिव्यक्ति जितनी मञ्जुल और मनोज्ञ हुई है, उतनी किसी अन्य धर्म की नहीं।



यक्षिणी

झाँसी जिले में स्थित देवगढ़ नामक स्थान पर गुप्त कालीन मूर्तिकला के ऊपर शेषशायी भगवान विष्णु के नाना रूपों की तथा उनके नाना अवतारों की मूर्तियाँ इतनी मधुरिमा के साथ प्रस्तुत की गयी हैं कि कला का पारखी उन्हें देख कर आत्म

विस्मृत हो जाता है और अतृप्त नेत्रों से उनकी सुन्दरता निरख कर भी वह अघाता नहीं। यह अनन्तशायी विष्णु की नितान्त कला की पूर्ण प्रतिमा है। "भिलसा" के समीप उदयगिरि की गुहा के दीवाल पर वाराह की एक विशालमूर्त्ति मिलती है, जो कमनीय कला की कोमल अभिव्यञ्जना का परिणाम है। बगाल के राजशाही जिलेके पहाड़पुर नामक स्थान की खुदाई से मिली हुई मूर्तियों से रामायण तथा महाभारत कालीन कथाओं के अतिरिक्त श्री कृष्ण की लीलामें प्रदर्शित की गई है। कला का स्वरूप सबसे पहले अथर्ववेद, स्थापात्य उप वेद में, वाद में समराङ्गणसूत्रकार मानसार नीतिसार, विष्णुधर्मोत्तर पुराण, भागवत पुराण, कामसूत्र, नाट्य शास्त्र आदि अनेक ग्रथों में पायी जाती है। कला वस्तुत: जीवन के सूक्ष्म और सुन्दर पट का वितान है, जिसके आश्रय में लोक अपनी उत्सवानुगामी और संस्कार प्रवृत्तियों को तृप्त करता हुआ, उच्च मन की शांति और समन्वय का अनुभव कर सकता है। इसके के बीच में ही जीवन पूरी तरह से रहने योग्य बनता है।

वर्तमान समय में भारतीय कलाविदों की सेवा भी अत्यन्त प्रशसनीय है। राष्ट्र एवं विश्व की मानवीय भावनाओं का चित्र के द्वारा अभिनय करनेके लिए बड़ी साधना एवं साधन की आवश्यकता होती हैं। जिसके संरक्षण सम्वर्धन एव पोषण करने में राष्ट्र का कल्याण निहित है। इसप्रकार संक्षेप में साहित्य और ललित कलाओं का समीक्षात्मक परिचय किया जा सकता है।

भादों की झड़ी और युवा मन

भादों का आ जाना आकाश
शाम के धुंधलके में
मेघ विहीन
सिर मुंडी नवयौवना की तरह रूखा और उदास।
दूर कहीं चमकती बिजली की एक क्षण रेखा
क्षणभर में ही दुःख जाते गांठे दर्द की तरह
यों पसर जाती चारों ओर
कि जैसे नगर में फैलती है अफवाह
गोली - वर्षा, कर्फ्यु, आन्दोलनों का।
पानी कब आजाए
कुछ ठीक नहीं
एक हल्की फुहार जहाँ
मूसलाधार बन सकती है
वहाँ कुछ भी कहना कितना बेमानी है?
जाने क्यों मुझे लगता है
कि इस विक्षुब्ध
चाय की उबाली पत्ती से बेदरंग चेहरे वाले
पर कुछ कर गुजरने को बेताब
युवा मन में
वही पीड़ा, अनिश्चितता, अजानापन है
जो विशेषता है भादों की झड़ी की
फिर भी नहीं निराश हूँ मैं
क्योंकि अपने विजन-पथ का

खुद सहारा हूं
भविष्य ग्रांकना चाह कर मैं बनाता चित्र जो
वह सिरकटे रीढ़ टूटे ग्रौर गूंगे
मधुव्रत को ही होती है
इसीलिए प्रत्येक भटके
मनु-पुत्र को ग्रागाह करना चाहता हूं
कि जमीन-छोड़कर चलते पुच्छल
त्रिशंकु भले हो जाएं
ग्रच्छे धावक नहीं बन पाते

—:०:—

चन्द्रभाल मधुव्रत
बी. २०।५५ भेलूपुर,
वाराणसी

समीक्षा

श्रीमत स्वामी प्रेमानन्द तीर्थ-जीवनी

श्रीमद् स्वामी प्रेमानन्द तीर्थ की जीवनी एवं पत्रावली। संकलित-संक्षेपित सम्पादित।

सम्पादक एवं संकलयिता श्री ओम्-कार नाथ मुट्टू प्रकाशक श्री कृष्ण संघ ५२ ४६ लक्ष्मी कुण्ड, वाराणसी—१

पृष्ठ संख्या परिशिष्ट सहित ३५२ मूल्य ६ रुपया मात्र।

नवम्बर सन् १९६८ में प्रकाशित इस पुस्तक को यदि हिन्दी की वह महानउपलब्धि मानी जाय तो उसके अध्यात्मिक प्रकाशनों की शृंखला में एक नूतन कड़ी के रूप में प्रस्तुत होती है तो अत्युक्ति नहीं होगी। संकलयिता श्री मुट्टू जी ने इसमें स्वामी जी के वे पत्र जो वे अपने जिज्ञासुओं के अध्यात्मिक संशय-सन्देहां से भरे हुए प्रश्नों के उत्तर होते थे तथा उनकी जीवनी को अत्यन्त संक्षेप में प्रस्तुत करने का सुन्दर प्रयास किया है। ये पत्र मूल बंगला भाषा में आठ खण्डों में प्रकाशित हुए थे तथा इन आठ खण्डों के पुस्तकाकार पत्रों की पृष्ठ संख्या लगभग १३४२ पृष्ठों में थी। इस १३४२ पृष्ठों का सारांश केवल २५५ पृष्ठों में प्रस्तुत करना सम्पादक का तथा आठ खण्डों के सभी मुख्य बातों का समायोजन इस पुस्तक की गरिमा को और भी बढ़ा देती है। प्रारंभ के पृष्ठों में महामहोपाध्याय डा. गोपीनाथ कविराज के द्वारा लिखित प्रस्तावना स्वामी जी का सन्देश उनकी अन्तिम वाणी तथा चित्र इत्यादि और अन्त में ३३२ से लेकर ३५२ तक के पृष्ठों में जीवन का लक्ष्य स्वामी जी के जीवन की घटनाएं एवं स्वामी जी की वाणी आदि का संकलन इस पुस्तक को और भी मूल्यवान बना देती है। पुस्तक में जुड़ा हुआ एक परिशिष्ट वास्तव में इस पुस्तक की उपादेयता में और अधिक वृद्धि कर देता है। पहले संकलयिता ने ७५ पृष्ठों में स्वामी जी की जीवनी को अत्यन्त ही आकर्षक ढंग से संजो गया है जिसे पढ़कर किसी भी सहृदय के हृदय में स्वामी जी के प्रति केवल श्रद्धा ही उत्पन्न नहीं होगी अपितु उनके द्वारा किये गये ८८ वर्ष तक की लगातार जन सेवा का इतिहास पढकर व्यक्ति अनुप्राणित हो उठेगा तथा उसके हृदय में आध्यात्म का बीज सहज में ही अंकुरित हो उठेगा यह स्वामी जी के चरित्र की ही विशेषता है जो कभी भी जनसेवा से अपना मुंह नहीं मोड़ते तथा दण्डी होकर भी इन्होंने सेवार्थ अपने दण्ड का त्याग कर दिया। स्वामी जी का चरित्र केवल श्रद्धालुओं को ही अविभूत करने में ही समर्थ नहीं है अपितु यदि इसे एक

बार नास्तिक भी पढ़े तो उसका मस्तक श्रद्धा से अवश्य झुक जायेगा और यही संकलयिता के इतने महान श्रम का मूल्य प्राप्त हो जायेगा। इसमें सन्देह नहीं है। स्वामी जी की जीवनी के बाद उनके द्वारा लिखे हुए पत्रों का सिलसिला चलता है। ये पत्र आठ शीर्षकों के अन्तर्गत रखे गये हैं।

१—भालोवास ओ सेबा,
२—जन्म-मृत्यु,
३—देखा
४—पुनर्जन्म,
५—तत्त्वकथा,
६—मर्म कथा,
७—आध्यात्मिक तत्व एवं
८—हौवा ओ पावा।

इन पत्रों में स्वामी जी की जीवन पर्यन्त चलने वाली साधना अन्तः प्रेरणा तथा और आस्तिकता को सार रूप में प्रस्तुत किया गया है। उनके अनन्त ज्ञान और अगाध अनुभव बीज रूप में पत्रों में वर्तमान हैं जो कि किसी भी श्रद्धालु साधक के जीवन पथ का पथिक बनने में पूर्ण समर्थ है। वास्तव में हिन्दी में इस तरह के ग्रन्थों का अभी पूरा-पूरा अभाव सा है जो दिग्भ्रमित कुण्ठित एवं भौतिकवादी जनता को एक स्पष्ट दिशा प्रदान कर सके इस दिशा में इस संग्रह का अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान होगा यदि इसे उचित रूप से प्रचारित एवं प्रसारण किया जाय। इस संग्रह में वे सभी तत्व वर्तमान हैं जो एक अनास्थावादी हृदय को आलोड़ित विलोड़ित कर सकते हैं तथा आध्यात्म की ओर उनके मन को उन्मुख करा सकते हैं। पत्रों का संक्षेपीकरण अत्यन्त सुन्दर बन पड़ा है एवं मुख्य २ बातों का बड़ी ही चतुरायी से संकलन किया गया है। तात्पर्य यह है कि यह संकलन छपायी, कागज, गेटप, जिल्द, प्रूफ के संशोधन तथा विषय परिपाक आदि सभी तत्वों म सराहनीय है। आदि से अन्त तक पढ़ने की जिज्ञासा को बनाये रखने में संकलयिता ने जिस कौशल का प्रदर्शन किया है इसके लिये वह धन्यवाद का पात्र है। पुस्तक पठनीय एवं संग्रहणीय है।

जयन्त कुमार मिश्र
लक्सा रोड,
वाराणसी।

भारत में गोमांस का प्रयोग ?

सम्पादक—जयदयाल जी डालमियां

प्रकाशक—श्री मोतीलाल जालान
गीता प्रेस, गोरखपुर
पृष्ठ २२८ डबलडिमाई अठपेजी मूल्य : दो रुपया

प्रस्तुत पुस्तक में श्री जयदयाल जी डालमियां ने भारतीय भक्त विचारकों से गहन विमर्श करके 'प्राचीन भारत में गोमांस का प्रयोग होता था और हिन्दू धर्म ग्रन्थों में इसकी चर्चा है' इस मिथ्या धारणा-जिसका सरकार परस्त जी हुजूर नेताओं एवं उनके पद-चुम्बी लालची महापण्डितों द्वारा प्रचार हुआ है—का बहुत ही सुन्दर ढंग से समीक्षण किया है। इस समीक्षण में हमें कई विशेषताएं दृष्टिगोचर हुई हैं :—

१—इस पुस्तक के प्रकाशन से ईसाई लेखकों एवं उनकी मिशनरियों द्वारा भारत के हिन्दुओं की आचारधर्म की प्राथमिकता नष्ट करने तथा ब्रिटेन के मैकाले पन्थियों की तथा उनके अनुगामी भारतीयों को राष्ट्र-भक्ति नष्ट करने तथा क्लर्कीय जीवन को बढ़ाने वाली शिक्षा प्रणाली और ब्रिटिश शासन के प्रति राजभक्त पद, यश अथवा अर्थ लोलुप भारतीय विद्वानों के काले कारनामों का भी भण्डाफोड़ हुआ है।

२—गान्धी जी का गोरक्षा विषयक मन्तव्य प्रारम्भ में ही देकर गांधी भक्ति का ढोंग रचने वाली कांग्रेस सरकार की गौरक्षा सम्बन्धी खोखली घोषणा की भी छीछा लेदर कर दी है।

३—इस पुस्तक के पढ़ने से हमें ईसाई तथा मुस्लिम देशों के विश्वविद्यालयीय प्राध्यापकों के कुटिलतापूर्ण लेखों तथा वहां के विश्वविद्यालयों के भारत सम्बन्धी प्रकाशनों एवं इतिहास सम्बन्धी गवेषणाओं से भी सावधान रहने की चेतावनी मिलती है।

४—यह पुस्तक गौमांस भक्षणके फैलाये गये मिथ्या प्रचारित वेद, उपनिषद और पुराणों तथा स्मृतियों के उन वाक्योंके पूर्वापर प्रसङ्ग सहित उद्धृत कर तथा अधिकारी विद्वानों द्वारा उन स्थलों का मर्म प्रकटकर देश के प्राचीन गौरव के विनाशक तत्वों की असलियत खोल देती है।

विगत ४, ५ वर्षों से संसद में नाम मात्र के हिन्दू श्री जगजीवन राम आदि के गैर जिम्मेदारी ढंग से हिन्दू धर्मी मानस को उद्वेलित करने वाले भारत में गोमांस भक्षण समर्थन सम्बन्धी भाषणों को सुनकर स्वाभिमानी लेखकों ने मुंह तोड़ विद्वतापूर्ण उत्तर दिये हैं जिनमें सर्वप्रथम हिन्दी प्रभाके पिछले अंक में महेन्द्र प्रताप श्रीवास्तव का वेदों में गोमांस भक्षण बताना महाभ्रांति शीर्षक लेख बहुत ही मननीय रहा है, अच्छा होता कि उस लेख की विशिष्ट सामग्री का भी इस पुस्तक में समावेश रहता है।

इस पुस्तक को पढ़ने के पश्चात् भारविद्या क्षेत्र के अग्रणी प्रकाशकों को भी अपना कर्तव्य निर्धारित करना होगा। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् अभी भी विश्व प्रसिद्ध संस्कृत पुस्तकों के प्रकाशक योजनाबद्ध रूप से भारतीय तत्वों के विनाशकारी

विदेशी लेखकों मैक्समूलर, डी० ह्विटने, विण्टरमित्स, रूडोल्फ राथ, प्रो० विल्सन, जान म्यूर, बोठलिंक, कून्ह, मोतियर विलियम्स, अलबर्ट वेवर आदि की दुष्टतापूर्ण कृतियां प्रकाशित करने में गौरव की अनुभूति करते हैं। इस पुस्तक में राष्ट्रकवि की कविता, क्या मांस मनुष्य का स्वाभाविक भोजन है ? श्री मुकुन्दी लाल तथा राहुल सांस्कृत्यायन के भ्रामक विचारों पर विवेचन, पाश्चात्य संस्कृतज्ञों की नीयत, क्या वैदिक काल में गोहिंसा मांस परम यज्ञ और मांस भक्षण प्रचलित थी ? ईसाई धर्म में गोहिंसा की जघन्यता, मुस्लिम धर्म में गोमांस निषेध आदि प्रकरण अत्यन्त उपयोगी एवम् ज्ञानवधक हैं। इस पुस्तक के प्रति धनिकों का कर्तव्य है कि वे अधिकाधिक प्रतियां खरीद कर निःशुल्क वितरित करावें। देश के शोध छात्रों, धर्मप्रचारकों साधु महात्माओं व ब्राह्मणों को तो हर समय इसे अपने साथ रखना चाहिये। पुस्तक हर भारतीय के घर में शोभा को ही बढ़ावेगी।

प्रकाशक के प्रति हमारा निवेदन है कि वे श्री डालमियां जी के साथ विचार-विमर्श में भाग लेने वाले उन सत्पुरुषों की नामावली भी प्रकट करें जिनके विचार इस पुस्तक की रचना में सहायक हुए हैं ऐसा देखा गया है कि गीता प्रेस से प्रकाशित पुस्तकों के टीकाकार विद्वानों में वैश्य वर्ग के लेखकों का नाम रहता है लेकिन जो ब्राह्मण विद्वान उसमें प्रमुख रहते हैं उनकी उपेक्षा की जाती है। अच्छा हो इस पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद भी प्रकाशित किया जाय।

पुस्तक भाषा शैली, छपाई, सफाई एवं जिल्द बन्दी तथा मूल्य की दृष्टि से अत्युत्तम है।

—देवकी नन्दन शास्त्री
साहित्यरत्न

'ज्योतिर्विज्ञान'

ज्योतिर्विज्ञान की दृष्टि में, आपकी और आपके परिवार का यह सन् १९७१ई० शीर्षक ग्रन्थ श्रीमती काशीलाल मिश्र की परिश्रम पूर्ण कृत है। श्रीमती मिश्र जी का प्रकाशन के क्षेत्र में यह प्रशंसनीय प्रथम प्रयास है। अब तक के प्रकाशित राशिफल केवल चन्द्र राशि पर से ही लिखे गये हैं। किन्तु यह पुस्तक जन्म लग्न को प्रधान और चन्द्र राशि को गौणभान है। हुए प्रत्येक व्यक्ति के जन्म कालीन प्रमुख ग्रहों के गृहचार को भी वर्षकालीन गृहचार में प्रमुखता देते हुये लिखा गया है। कहीं-कहीं तो राशिफल बहुत ही सूक्ष्म विषयों का विवेचन करता है। लेखक ने राष्ट्रीय समस्याओं अथवा राष्ट्रीय भविष्य का ज्योति शास्त्र की दृष्टि से कोई भी विवेचन इस पुस्तक में नहीं किया, यह एक आवश्यक विषय अधूरा ही रह गया है। आशा है आगामी वर्ष लेखक इस विषय का समावेश तथा वर्ष में होने वाले ग्रहण एवं संक्रान्ति जन्य शुभाऽशुभ फल का भी इसमें करेंगे। भाषा प्रवाह पूर्ण है और कटुसत्य को प्रकट करती है।

कहीं-कहीं भाषा में राजस्थानी, मराठी एवं अप्रचलित प्रयोग भी हुआ है। जिसे लेखिका का स्त्री सुलभ दोष होना चाहिए। लेखिका का सत्प्रयास प्रशंसनीय है। प्रस्तुतः जन-साधारण के लिये पठनीय एवम् प्रयोजनीय तथा संग्रह है।

— साधुराम सुख
काशी देवी मठ
सप्तसागर, वाराणसी

—:*:—



होमियापैथी विज्ञान



ले० डा० हरेन्द्र नाथ वर्मा

होमियोपैथी के जन्मदाता जर्मनी के डा० सैमुएल हैनिमैन ने कहा है "चिकित्सक का उत्तम तथा प्रधान कर्तव्य रोगी को निरोग कर स्वस्थ करना है"।

मानव शरीर मे रोग किस कारण से उत्पन्न होता है, यह जानना परमावश्यक है। जब किसी प्रकार का विष शरीर में प्रवेश करता है तो स्वस्थ शरीर रोगी हो जाता है। तब इस विष को बाहर निकालने की क्रिया प्रारम्भ होती है। इसके दो स्वरूप होते हैं। एक प्रत्यक्ष और दूसरा अप्रत्यक्ष। अप्रत्यक्ष तत्वों का केवल रोगी अनुभव करता है क्योंकि वे सूक्ष्म होने के कारण आँखों से दिखाई नहीं पड़ते। रोगी केवल अपने मानसिक क्लेशों को बतलाता है। प्रत्यक्ष कारणों के फलस्वरूप रोगी का शरीर और अंग साधारण क्रिया करने में असमर्थ हो जाता है जो चिकित्सक अपने अनुभव से समझ लेता है और यही रोग के लक्षण कहलाते हैं। इनकी लक्षणों के आधार पर चिकित्सक रोग का निदान करता है और कठिन से कठिन रोगों का इलाज करता है। जो होमियोपैथिक चिकित्सक रोग के कारणों को जानने में जितना समर्थ होगा वह उतना ही अधिक सफल होगा।

होमियो पैथिक चिकित्सा—शैली की कुछ विशेषतायें हैं जो निम्नलिखित हैं—

१—दवायें बहुत सस्ती होती हैं और और दूसरी दवा के मुकाबले में खाने में स्वादिष्ट होती हैं।

२—अधिकांश रोग बिना चीर फाड़ के केवल औषध खाने से अच्छे हो जाते हैं।

३—पुराने और जाहिल रोग जो दूसरे इलाजों से असाध्य जान पड़ते हैं वह होमियो पैथिक द्वारा जल्द अच्छे हो जाते हैं।

सर्वसाधारण मनुष्यों का यह विचार है कि होमियो पैथिक डाक्टर बनना सरल है—बड़ी भूल है। वास्तव में इस विज्ञान का अध्ययन बड़ा कठिन है और कठिन परिश्रम की आवश्यकता है। ५० वर्ष पहले एक साधारण मनुष्य होमियोपैथी की एक पुस्तक और एक छोटा दवा का बक्स रख कर डाक्टर बन बैठता था। परन्तु जैसे-जैसे दिन बीतता गया इन नीम हकीमों की संख्या कम हुई क्योंकि सरकार ने इसके ऊपर ध्यान दिया और अब तो केवल होमियोपैथिक कालेजों से पास किये स्नातक ही होमियो पैथिक चिकित्सा करते हैं।

होमियो पैथिक चिकित्सा प्रणाली के प्रचार तथा प्रसार के लिये सरकार ने विशेष ध्यान नहीं दिया है। वास्तव में यदि सरकार की ओर से ग्रामों में होमियो पैथिक औषधालय खुले तो ग्रामीण जनता का बहुत कल्याण हो।

एक अन्तर्कथा

उस रात
चांदनी अलसायी सोयी पड़ी थी
जब पहला विस्फोट हुआ,
वह कुनमुनाई
दूर हटे हाथ अभी सिमटे ही थे
कि दूसरा विस्फोट हुआ
और वह पूरी तरह ऊठ कर बैठ गयी
पर आंचल ब्लाउज
अभी संवर ही सके थे कि
तीसरा विस्फोट हुआ
और ब्लाउज बिखर गया
गले की नीली नसें दबती गयीं
आंचल अरगनी बन गया।
पर चांदनी ?
वह बन गयी जेठ की दुपहरी
और फिर
चौथा विस्फोट अधूरा ही रह गया............
दुपहरी तपने जो लगी
दायां हाथ जलने जो लगा,
और जिन्ना की औलाद
बौनी हो गयी
हिटलर एक बार और
मर गया,
और एक बार फिर
एक सही आवाज जीत गयी।

—गंगा राम 'तरुण'
डी० १५।२६ मानमन्दिर, वाराणसी

—:*:—

"दुख की ज्वाला"

तुम क्या जानो दुख की ज्वाला ?
भर लेते ही पेट मौज से, पीकर सुख से मादक हाला,
तुम क्या जानो दुख की ज्वाला ?

आँसू से भीगे नैनों मे, भीगी आशा की उजियाली,
अंधकार में देख रहा मन, जग जीवन की रीती प्याली,
अँतड़ी सूखी, नस-नस ढीली, पड़ा थके चरणों में छाला,
तुम क्या जानो दुख की ज्वाला ?

श्रम जल से सींचा मैंने, सह, आतप-वर्षा की कठिनाई,
पाले सी आकर की तुमने भग्न हृदय की पहुनाई,
रुधे कण्ठ से फूट पड़ी, कातर गीतों की हिम-माला,
तुम क्या जानों दुख की ज्वाला ?

अनायास मिल गये यहाँ तुम, यह धरती है परिवर्तन की,
जाओ प्रिय, पथ देखो अपना, राह नहीं प्रत्यावर्तन की,
सघर्षों से मथकर आता, जीवन का नवनीत निराला
तुम क्या जानों दुख की ज्वाला ?

गंगा शंकर दीक्षित
रविन्द्रपुरी, वाराणसी

सिरहाने के बाद, पैताना भी

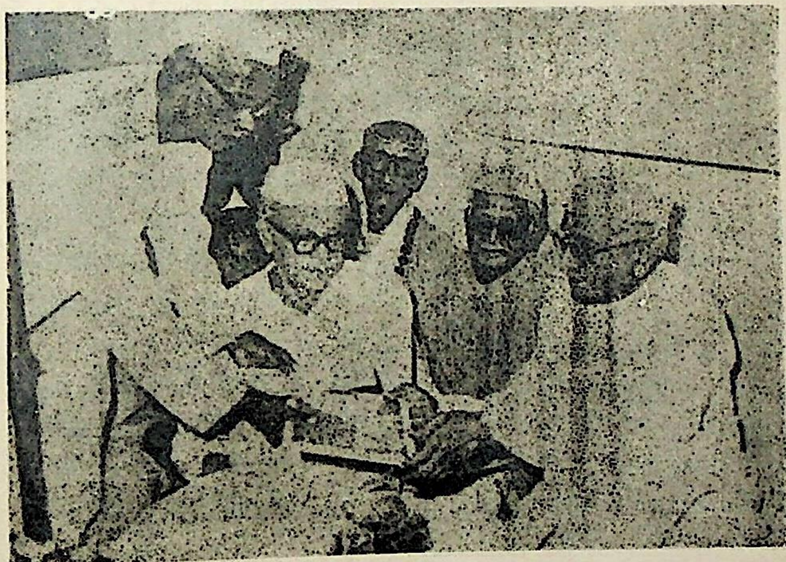
मौसम कितना अच्छा है
देखो न,
कितना अच्छा है मौसम !

घरों का हंसना
चौखटों का चहकना
खिड़कियों का ताली बजाना... ...
जिधर देखो, यही है
सन्नाटा कहीं नहीं है
सचमुच, कितना अच्छा है मौसम !
द्वापर का गोवर्धन ज्यों का त्यों खड़ा है
देश आज भी बहुत—बहुत बड़ा है
जो तेज है, काटता है
जो चालाक है, बांटता है
हम अपना हिस्सा बतौर पा जाते हैं
फिर हम क्यों सोचें
—कि पांव तलो की जमीन, गर्म
और आकाश बदरंग है
—कि हमारे दुबले-पतले छोटे से
शरीर के लिए हर दरवाजा तंग। है
जब कि हमारी परम्परा में
भीड़ बनाने से आसान और बेहतर है टोलियां बनाना
गुनगुनाना, हकलाना !

हमारी आजादी ताड़ के सिरे से उतर कर
सुनने लगी है सड़कों, चौराहों, गलियों का अनहद नाद
जैसे कोई भी चुस्त-दुरुस्त उम्र
सोलह कदम चलने के बाद।
कोई रस घोल रहा है
कोई रसातिरेक में गा रहा है
हमारी संसद मौन नहीं, मुखर है
कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर का एक और रिश्ता आ रहा है
यानी तब हाथ से हिमालय गया था
अबकी हिन्द महासागर जा रहा है

—वशिष्ठ

डी. ६१/३१ ए. सिद्धगिरि बाग, वाराणसी



दिनांक १८-८-१९७१ को

अभिमन्यु पुस्तकालय के नवनिर्मित सभाकक्ष के उद्घाटन के समय भारत के भूतपूर्व उप-प्रधान मन्त्री श्री मोरार जी भाई देसाई को पुस्तकालय के मंत्री श्री अलखनाथ यादव द्वारा मान-पात्र भेंट करते हुए—बायें से—संस्था के अध्यक्ष स्व० श्री सन्त शरण मेहरोत्रा, बीच में कवि पुष्कर (माला पहने हुए), दाहिने श्री मोरार जी देसाई (जाकेट पहने हुए)

सिंहावलोकन

प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी पुस्तकालय में श्री तुलसी जयन्ती, श्रीराम नवमी, श्री कृष्ण जन्माष्टमी, महाकवि कालीदास, सूरदास, जयन्ती, १५ अगस्त स्वाधीनता दिवस, २६ जनवरी का० कृ० १३ को अभिमन्यु दिवस मनाया गया। इसके अतिरिक्त, गणमान्य समाजसेवी एवं विद्वानों का सम्मान किया गया।

—१८-८-७१ को पुस्तकालय के नवनिर्मित सभाकक्ष का उद्घाटन प्रदेश के भू० पू० मुख्य मन्त्री श्री चन्द्रभानु गुप्त की अध्यक्षता में भू० पू० भारत के उप-प्रधान मन्त्री श्री मोरार जी देसाई के कर कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। श्री देसाई जी ने अपने भाषण में गीता के उपदेशों पर प्रकाश डालते हुए संस्था के कार्यों की सराहना की। इस अवसर पर भू० पू० संसद सदस्य ठाकुर रघुनाथ सिंह जी ने श्री पुस्तकालय के द्वारा किये गये सेवा कार्यों पर प्रकाश डाला।

—१० सितम्बर १९७१ को पुस्तकालय की ओर से डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी की अध्यक्षता में बौद्ध-जगत प्रसिद्ध विद्वान न० भिक्षु धर्मरक्षित त्रिपिटका चार्य एम० ए० पी-एच० डा० डी० लिट० का अभिनन्दन किया गया।

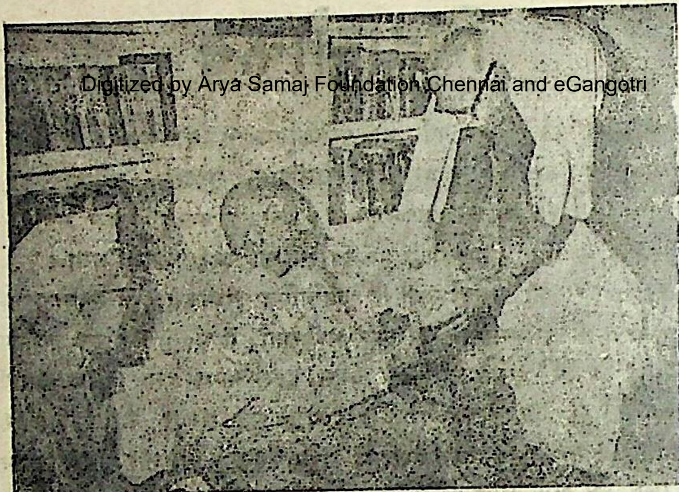
इस अवसर पर उपस्थित विद्वानों में सर्व श्री पं० रमापति शुक्ल, पं० कृष्णमोहन ठाकुर, पं० गोपाल शास्त्री, दर्शन केशरी, पं० लालजी राम शुक्ल, श्री नारायण श्रीवास्तव आदि ने अपने भाषण में श्री भिक्षु धर्म रक्षित के व्यक्तित्व प्रकाश डाला।

प्रारम्भ में संस्था की ओर से श्री भिक्षु धर्म रक्षित जी का अभिनन्दन किया गया। श्री धर्म रक्षित जी ने अपने भाषण में आभार प्रकट करते हुए पुस्तकालय की अभि-वृद्धि कामना की।

समारोह के अध्यक्ष पद से बोलते हुए श्री पद्म वि० डा० हजारी प्रसाद जी ने भिक्षु धर्म रक्षित जी के गुणों की प्रसंशा करते हुए अपने भाषण में बंगला देश में चल रहे युद्ध के सम्बन्ध में कहा कि भारत का यह युद्ध केवल शौर्य प्रदर्शन मात्र नहीं अथवा विस्तारवादी अतिक्रमण नहीं बल्कि लोकतंत्र और स्वतंत्रता के उच्च आदर्शों एवं सिद्धांतों के लिए महान संघर्ष है। जिससे भारत का विजय निश्चित है। यह युद्ध सत्य और न्याय के लिए है।

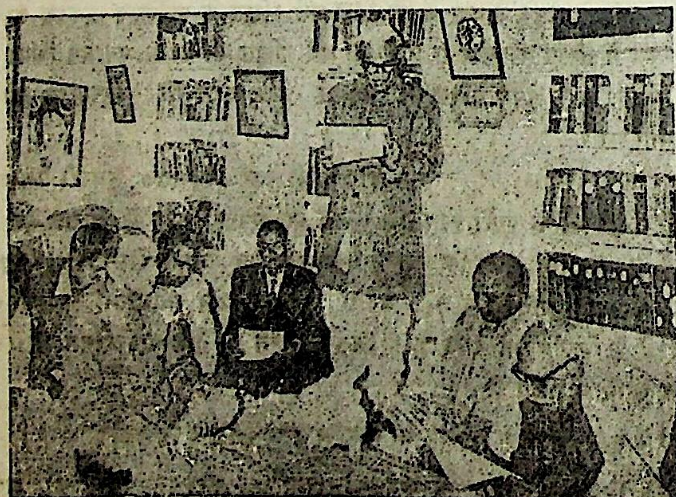
अन्त में पुस्तकालय के अध्यक्ष श्री गोपाल लाल वर्मन ने धन्यवाद दिया।

—२५ सितम्बर १९७१ ई० को नगर प्रमुख श्री पूरन चन्द्र पाठक की अध्यक्षता में प्रसिद्ध चित्रकार श्री मनोरंजन कांजी लाल जी के जन्म दिवस पर पुस्तकालय की ओर से अभिनन्दन हुआ। इस अवसर पर नगर के प्रमुख साहित्यकारों में सर्वश्री प० लक्ष्मी शंकर व्यास, श्री शकर शुक्ल, मोहनलाल जी गुप्त, प० लालधर जी प्रवासी, रामचन्द्र नरहा वायर, बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते, आदि उपस्थित थे।



१२ सितम्बर को अभिमन्यु पुस्तकालय में

डा० भिक्षु धर्मरक्षित के अभिनन्दन समारोह के अध्यक्ष डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी श्री भिक्षु धर्मरक्षित जी को पुष्पों का गुच्छा भेंट करते हुए बाईं ओर श्री पं० रमापति शुक्ल बैठे हुए।



१२ सितम्बर को अभिमन्यु पुस्तकालय में

डा० भिक्षु धर्मरक्षित के अभिनन्दन समारोह के अवसर पर मध्य में श्री रमापति शुक्ल अभिनन्दन पढ़ते हुए दायें से डा० हजारी प्रसाद जी द्विवेदी श्री गोपाल लाल वर्मन, श्री रामचन्द्र जायसवाल।

"खण्डहरों के देश में"

लेखक—श्री बनारसी लाल पांडेय 'आर्य'

भूमिका लेखक : पं० लालधर त्रिपाठी 'प्रवासी' मूल्य मात्र आठ रुपये

.... विद्वान लेखक ने इस पुस्तक में जहाँ जैसा देखा परखा, समझा, उसे भलीभाँति चिन्तन मनन तथा अन्तर्चक्षु से देखने का भरपूर प्रयास किया है। इतिहास, संस्कृति एवं धार्मिक हर दिशा से पुस्तक की उपयोगिता विद्यार्थी पाठक एवं पुस्तकालयों के लिए संग्रहणीय है।

प्रकाशक—हिन्दी साहित्य मन्दिर : वाराणसी—१

काश्मीर-दर्शन

लेखक-बनारसी लाल आर्य

काश्मीर भारत का स्वर्ग है। इसकी महत्ता धार्मिक राजनैतिक एवं ऐतिहासिक सामाजिक अपने ढंग का महत्वपूर्ण स्थान रखता है। लेखक ने बड़े ही रोचक एवं यथार्थ दृष्टिकोण अपना कर पुस्तक की उपयोगिता को बढ़ा दिया है। प्रकाशक ने भी मनोरम चित्रों द्वारा काश्मीर की सही रेखाओं को स्पष्ट कर दिया है। पूरी पुस्तक पढ़े बगैर छोड़ने को जी न चाहेगा।

मूल्य मात्र २)

बलवन्त सिंह और काशी का अतीत

लेखक-बनारसी लाल पांडेय 'आर्य'

काशी नरेश महराजा बलवन्त सिंह का जीवन और काशी का इतिहास। उनका वीरता पूर्ण जीवन और काशी की ऐतिहासिक घटनाओं का सही वर्णन, जो कि अनुपलब्ध था लेखक ने उसे देखकर स्पष्ट कर लिपि बद्ध कर दिया है। घटनाएँ रोचक हैं तथा काशी के अतीत का वैभव प्राप्त कर पाठक गौरव का अनुभव करता है। पुस्तक अवश्य पढ़ें तथा मित्रों को भी पढ़ायें। ऐसा भी लोगों का कहना है कि महाराजा बलवन्त सिंह पर हिन्दी में यही पहली और प्रामाणिक पुस्तक है।

मूल्य मात्र ५)००

सम्पादकीय

आभार प्रदर्शन

अभिमन्यु पुस्तकालय अपनी साहित्यिक गतिविधियों के लिए भी प्रख्यात है। तदनुकूल ही यह वार्षिक आपके सम्मुख है। विलम्ब अवश्य हुआ। कारण अनेक थे। इस बीच देश का इतिहास भी बदला। दुनिया का भूगोल बदल गया। 'बंगला देश' के रूप में एक नये देश का उदय हुआ। पुस्तकालय के लिए भी पिछला वर्ष अत्यन्त मंगल-प्रद रहा। सभा-मंडप ' ऊपरी मंजिल) का उद्घाटन भूतपूर्व उप-प्रधान मंत्री श्री मोरार जी भाई द्वारा सम्पन्न हुआ जिसमें अनेक गण्यमान नेता सम्मिलित थे।

वर्तमान वर्ष भी आशाप्रद है। मानस चतु:शती के निमित्त यह तैयारी का वर्ष है। स्वतंत्र भारत में अनेक शताब्दियाँ मनायी गयी जिसमें महात्मा गांधी जी की शताब्दी भी मुख्य है। पूर्व आयोजनों को देखते हुए यह समीचीन प्रतीत होता है कि हम लोग इस महान शतु:शताब्दी की अभी से जोर दार तैयारी करें। हर्ष की बात है कि हमारे मुख्यमंत्री पंडित कमलापति इस दिशा में सर्वाधिक सचेष्ट हैं। उनके नेतृत्व में यह कार्य हो रहा है। अपने पुस्तकालय का भी हम महान कार्य में योगदान हो इसके लिए हम अभी से सचेष्ट हैं।

अंत में हम अपने कृपालु लेखकों, विज्ञापन दाताओं एवं प्रेस के प्रति आभार प्रदर्शन करते हैं जिनके सहयोग से यह सुअवसर प्राप्त हुआ है।

—सम्पादक



श्री प्रभात रंजन साह

नगर के प्रतिष्ठित साह वंश के स्व० श्री नाथ साह के आप पुत्र हैं। अपने पुस्तकालय पर आपकी बड़ी कृपा रहती है। इसी प्रकार अनेक सार्वजनिक संस्थाओं में आपका योगदान रहता है।

—सम्पादक